DDCE Utkal University

हिंदी (एम.ए.)

M.A. (Hindi)

Semester - I

PAPER - IV

पाश्चात्य काव्यशास्त्र

लेखक

डॉ. ए. उस्मान खान

Certified that Syllabus & Courses of Study have been prepared

According to the UGC guidelines

DDCE UTKAL UNIVERSITY

M.A. (Hindi)

PAPER - IV

पाश्चात्य काव्यशास्त्र

Unit - I क) प्लेटो का काव्य सिद्धांत

ख) अरस्तू - अनुकरण सिद्धांत और त्रासदी

Unit - II क) आइ.ए. रिचर्ड्स का सिद्धांत और व्यावहारिक आलोचना

ख) क्रोचे का सिद्धांत और अभिव्यजना

Unit - III स्वच्छन्दतावाद

मार्क्सवाद

मनोविश्लेषण

अस्तित्ववाद

अंक विभाजन :

तीन	दीर्घ उत्तर मूलक प्रश्न	12×3 = 36
तीन	आलोचनात्मक प्रश्न	8×3 = 24
दो	लघूत्तरी प्रश्न	5×2 = 10

कुल	= 70
सत्रीय कार्य	= 30
कुल योग	100

UNIT - I

प्लेटो और अरस्तू

1.0 अर्थ और परिसीमा

1.1 इतिहास

1.2 पाश्चात्य आलोचना के आदि आचार्य-प्लेटो

1.3 युग परिचय

1.4 प्लेटो का काव्य सिद्धांत

  1.4.1 अनुकृति सिद्धांत

1.5 अभ्यास प्रश्न

1.6 अरस्तू का व्यक्तित्व

1.7 अरस्तू का काव्य सिद्धांत

  1.7.1 अनुकरण सिद्धांत

1.8 त्रासदी -विवेचन

  1.8.1 त्रासदी के तत्व

1.9 अभ्यास प्रश्न

UNIT - I

पाश्चात्य काव्यशास्त्र

१.० <u>अर्थ और परिसीमा</u> :

पाश्चात्य काव्यशास्त्र जैसे कि नाम से स्पष्ट है कि समग्र पाश्चात्य जगत् के साहित्य -चिंतन का अध्ययन है । इसका विस्तार पुराने ग्रीस और रोम से लेकर यूरोप के इटली, फ्रांस, जर्मनी और इंग्लैंड के साथ रूस और अमेरिका जैसे देशों तक है । इसका इतिहास ईसा पूर्व पांचवीं शताब्दी से शुरू होकर आधुनिक काल तक व्याप्त है ।

विषय प्रवेश :

वैसे तो पश्चिम में सुसंबद्ध साहित्य -चिंतन यूनानी दार्शनिक प्लेटो के विचारों से शुरू हुआ है, परंतु उनके पहले भी जैनोफनीज, पारमैनीडीज, एम्पोडोक्लीज, होमर, सोक्रेटीस आदि विचारकों के कथनों में साहित्य चिंतन विखरे रूप में मिल जाता है । सच कहा जाय तो साहित्य -सर्जन के साथ उसकी विश्लेषण -प्रक्रिया भी चलती रहती है । इसलिए साहित्य शास्त्र संबंधी चिंतन के साथ-साथ उसके सिद्धांतों का निर्माण और विकास का क्रम भी चलता रहता है, अनेक मतवाद बनते और खंडित होते रहते हैं । अतएव इन सबका एक साथ अध्ययन जरूरी होता है ।

१.१ <u>इतिहास</u> :

पाश्चात्य काव्यशास्त्र का इतिहास प्लेटो और अरस्तू से आरंभ होता है । प्लेटो प्रत्ययवादी हैं तो अरस्तू अनुभववादी । रोमन कवि होरेस (65-68 ई.पू.) 'आर्स पोए टिका' में वस्तुपरक शुद्धतावादी होते हुए भी व्यवहारवाद से प्रभावित हैं । लौंजाइनस (ईसा की पहली शताब्दी) में उदात्तता को महत्व दिया गया है । ईसा की तीसरी शताब्दी में आत्मवाद (प्रत्ययवाद) और वस्तुवाद (अनुभववाद) का पुनरुत्थान नव्य प्लेटोवाद तथा अभिजात्यवाद (क्लासिसिज्म) के रूप में हुआ । प्लाटिनस दोनों तत्त्वों पर बल देते हैं । पांचवीं से पंद्रहवीं शती के चिंतन का प्रामाणिक इतिहास नहीं मिलता । 14-15वीं शती में पुनर्जागरण के साथ साहित्य तथा कला के क्षेत्र में नयी ऊर्जा का संचार

हुआ । यद्यपि पुनर्जागरण की मूल धारा व्यक्तिवादी और मानवतावादी थी, किन्तु प्राचीन साहित्य तथा संस्कृति के प्रति भी इस युग में उत्सुकता, उत्साह तथा सम्मान का भाव जागा । फलस्वरूप क्लासिकी साहित्य के पुनरुद्धार, अनुवाद तथा पुनर्व्याख्या आदि कार्य शुरू हुए । फिर जब पुनर्जागरणकालीन साहित्य में व्यक्तिवाद तथा कल्पना के अतिरेक के कारण अराजकता फैलने लगी तो विचारकों और रचनाकारों का झुकाव सहज ही आभिजात्यवाद की ओर हुआ ।

सत्रहवीं शताब्दी में क्लासिसिज्म (आभिजात्यवाद) का प्रभाव फ्रांस में दिखाई दिया । कार्नील, रासीन, बुआलो ने कथ्य तथा संरचना की भव्यता और संतुलन पर जोर दिया । अठारहवीं शताब्दी में जर्मनी में भी आभिजात्यवाद की लहर चली । इंग्लैंड में भी 18वीं शताब्दी में आभिजात्यवाद का प्रवेश हुआ । बेन जानसन (1573-1637) ने पुराने लैटिन - ग्रीक साहित्य के नियमों पर बल दिया । पोप(1688-1744) ने विवेक और संयम की वकालत की ।

वस्तुत: यूरोपीय पुनर्जागरण काल का पूरा बल वैयक्तिकता के महत्व की स्थापना पर था । व्यक्ति को विश्व का केंद्र माना गया और मानववाद के साथ आत्मतत्व की भी प्रतिष्ठा हुई । इस युग के विचारकों की मासिक्ता बिलकुल नए रूप में पनपी । अनेक युगांतकारी घटनाओं ने इस मानसिक्ता को बनाया । सामंतवादी ढांचा बिखरने लगा था । शिक्षितवर्ग तथा कामगार वर्ग जैसे नए समूह के उभरने के साथ सामाजिक संबंधों के समीकरण बदलने लगे थे । सामान्य जन और उच्चवर्ग के संपर्क में तनाव पैदा हुआ । फ्रासीसी राज्यक्रांति की जमीन तैयार होने लगी । स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व की भावनाएँ सभी विचारकों को झकझोर रही थी । अत: सत्रहवीं शती के रूढ़िबद्ध आभिजात्यवाद के खिलाफ स्वच्छंदतावाद मोर्चा ले रहा था । फिलिप सिडनी (1554-1586 ई.) से प्रत्ययवाद और आत्मवाद की पैरवी करते हुए कवि को भविष्य द्रष्टा ऋषि का दर्जा दिया था । अंग्रेजी कविता में विलियम ब्लेक (1757-1827) व कालरिज (1772-1834) पर आत्मवादी दर्शन का प्रभाव था । वर्डसवर्थ(1770-1850) में दार्शनिक रहस्यात्मकता और सर्वात्मवाद के विचार मिलते हैं । इस युग में काव्यभाषा पर विचार हुआ । कविता और नाटक के अलावा नई साहित्यिक विधाएँ अपनी पहचान बनाने लगी । अद्‌भुत सौन्दर्ययुक्त काव्य और अत्यंत संवेदनशील गद्यविधाएँ आईं ।

शास्त्रीय नियमों की सख्ती तथा काव्य पर काव्येतर मूल्यों के दबाव के खिलाफ विद्रोह की जो प्रवृत्ति मूल तत्त्व थी, वही कलावाद के रूप में उभरी । 1818 में फ्रांस के विक्टर कूजे ने 'कला कला के लिए' सिद्धांत का प्रतिपादन किया । आस्कर वाइल्ड, स्विनबर्न, एडगर एलन पो जैसे साहित्यकारों ने और ए सी ब्रैडले तथा वाल्टर पेटर आदि समालोचकों ने समर्थन किया । इसके अनुसार कला का उद्देश्य नैतिक या धार्मिक उपदेश नहीं, स्वयं अपनी पूर्णता की तलाश है ।

काव्य को स्वत:पूर्ण और निरपेक्ष बनाने की यह प्रवृत्ति बेनेदितो क्रोचे (1866-1952) के अभिव्यंजना सिद्धांत में अपने चरम पर पहुँची । कलावादियों ने कला की बाह्य अभिव्यक्ति को नकारा नहीं था लेकिन क्रोचे ने शब्द, स्वर, आकार, रूपरंग आदि को अनावश्यक करार दिया ।

उन्नीसवीं सदी के अंतिम दौर से साहित्य तथा समालोचना संबंधी कई सिद्धांत और आन्दोलन उभरकर आए । उनमें कुछ तो जल्दी समाप्त हो गए, लेकिन कुछ का असर लंबा रहा । इनमें प्रकृतवाद और प्रतीकवाद मुख्य हैं । प्रकृतवाद तथा जड़ यथार्थ के विरुद्ध ही प्रतीकवाद का उन्मेष हुआ । इसकी आत्मपरक और कलात्मक प्रवृत्तियों ने घटनाओं, व्यक्तियों तथा बाह्य जगत के पदार्थों की अपेक्षा मानवीय संवेदनाओं, मनोभावों और अनुभवों को अधिक महत्त्व दिया । यथार्थवादी भाषा और वर्णनों के बदले जीवन के महान अर्थों को अभिव्यक्त करने के लिए प्रतीकों की जरूरत पड़ी । प्रतीकवाद ने मिथकीय आलोचना को भी बढ़ावा दिया । बोदलेयर (1821-67) लील एडम (1838-89) , मलार्मे(1842-98) , रिम्बो (1854-91), डब्लू वी . ईट्स (1865-1939) आदि ने प्रतीकवाद को खूब परिपुष्ट किया । डर्डर(1744-1803) , नीत्शे (1844-1900) ने मिथकीय चिंतन को साहित्यिक सत्य के साथ जोड़ा । लेकिन आगे चलकर प्रतीकवादियों ने कथ्य के स्थान पर अभिव्यक्ति और रूप पर जोर दिया । वे समाज से कट गए और अबोध्य होने लगे ।

इंग्लैंड और अमेरीका की कविताओं में अतिस्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति के खिलाफ बीसवीं सदी में 'इमेजिज्म' (बिम्बवाद) के आंदोलन का उद्‌गम हुआ । इसके मुख्य प्रवर्तक टी.एस. ह्यूम (1889-1917) ने अति रोमांसिकता, अबोध्य प्रतीकों का विरोध किया । बिम्बवाद ने बोलचाल की भाषा, सटीक प्रयोग पर जोर दिया । एजरा पाउंड, डी एच लारेंस, एफ एस फ्लिंटन आदि ने इस आन्दोलन को गति प्रदान की । बीसवीं सदी में ही भाषाविज्ञान के प्रभाव से कलाकृति के भाषिक उपादानों के अध्ययन पर भी बल दिया गया । इसीसे शैली विज्ञान का प्रसार हुआ । रूस की रूपवादी और मार्क्सवादी आलोचना का उद्‌गम भी काफी महत्त्वपूर्ण रहा ।

पाश्चात्य आलोचना की एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति 'नई समीक्षा' के नाम से जानी जाती है । टी,एस इलियट और आई ए रिचर्डस इसके प्रतिष्ठापक थे । रिचर्डस के संप्रेषण और मूल्य सिद्धांत एवं व्यावहारिक आलोचना ने साहित्य -समीक्षा के क्षेत्र को झकझोर दिया । 1950 के बाद इसका महत्त्व भी कम होने लगा । आलोचना का एक विशेष युग समाप्त हो गया । लेकिन 'नई समीक्षा' ने एक नई दिशा दी । धीरे-धीरे आलोचना एकांगी नहीं रही । सत्य और सौन्दर्य अविभाज्यतत्त्व माने गए ।

आगे के पृष्ठों में मुख्यत: तीन इकाइयों में पाश्चात्य काव्यशास्त्र के अध्ययन का प्रस्ताव है । प्रथम इकाई में प्लेटो और अरस्तू के सिद्धांतों पर विचार किया जाएगा । दूसरी इकाई में रिचर्डस के

सिद्धांत , उनकी व्यावहारिक आलोचना पर चर्चा होगी । तीसरी इकाई में कुछ प्रमुख मतवादों पर विचार किया जाएगा । प्रसंग तथा स्थान के अनुरूप अन्य मतों पर भी विवेचन होता जाएगा ।

कुछ परिभाषिक शब्द

1.	आत्म वाद	प्रत्ययवाद	आदर्शवाद	
	Subjectivism	Idealisticism	Idealism	
2.	वस्तुवाद	अनुभववाद		
	Obejictivism	Empiricalism		
3.	शास्त्रवाद	आभिजात्यवाद		
	Classicism			
4.	स्वच्छंदतावाद	कलावाद		
	Romanticism	Art for Art sake		
5.	पुनर्जागरण			
	Renaissance			
6.	मानववाद	यथार्थवाद	साम्यवाद	
	Humanism	Realistic	Marxism	
7.	व्यक्तिवाद			
	Individualism			
8.	मिथक	बिम्ब	प्रतीक	आर्कटाइप
	Myth	Image	Symbol	Archetype

पाश्चात्य काव्यशास्त्र

पाश्चात्य काव्यशास्त्र में चर्चित विविध सिद्धांतों तथा वादों को जानने, उनके संबंध में चिंतन मनन करके उनके विषय में विशेष दृष्टिकोण से पाश्चात्य काव्यशास्त्रियों के सिद्धांत का गहन एवं सहज बोधगम्य अध्ययन सुधी पाठकों के लिए प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है ।

i) पाश्चात्य काव्यशास्त्र का आरंभ यूनान(ग्रीक) में हुआ जो मूलत: यूनानी या ग्रीक काव्यशास्त्र है । ग्रीक का दूसरा नाम यूनान है । यूरोप के दक्षिण पूर्वी छोर पर स्थित कई छोटे-छोटे द्वीपों का समूह ही यूनान है ।

ii) यद्यपि भारतीय काव्यशास्त्र का आरंभ भरत के नाट्यशास्त्र से होता है । तथापि उनके पूर्व के ग्रंथों में उन उपकरणों का अभाव नहीं था, जिसकी पृष्ठभूमि पर भारतीय काव्यशास्त्र के भवन का निर्माण भरत ने किया । यही स्थिति पाश्चात्य काव्यशास्त्र की भी है । पाश्चात्य काव्यशास्त्र का आरंभ यद्यपि ईसा की पांचवीं शताब्दी -पूर्व सुप्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक प्लेटो से माना जाता है । तथापि उनके पूर्व वहाँ अनेक ऐसे चिंतकों और दार्शनिकों का आविर्भाव हो चुका था, जिनके साहित्यिक आदर्श और समीक्षा-सिद्धांतों की झलकियाँ यत्र-तत्र दिखाई देती हैं । जेनोफनीज, पारमैनीडीज, एम्पडोक्लीज, होमर आदि इन चिंतकों, दार्शनिकों और साहित्य शास्त्रियों में प्रस्तुत है ।

यूनान के इन प्राचीन आचार्यों का मानव जीवन के नैतिक विकास के लिए महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है ।

iii) मोटे तौर पर पाश्चात्य काव्यशास्त्र के विकास को निम्नलिखित खंडों में विभाजित किया जा सकता है ।

1) प्राचीन काल(चतुर्थ शताब्दी ई. पूर्व से ईसा की चतुर्थ शताब्दी तक)

2) पूर्व मध्यकाल (पांचवीं शताब्दी से पंद्रहवीं शताब्दी तक ।

3) उत्तर मध्यकाल (15वीं से 18वीं तक तथा

4) आधुनिक काल (19वीं शताब्दी से वर्तमान काल तक) ।

इनकाल खंडों में प्लेटो, अरस्तू, डायोनिसियस, सिसरो, देमेत्रियस, लौंजाइनस, होरेस, क्विन्टीलियन आदि प्रथम काल खंड में आते हैं । दूसरे कालखंड (पूर्वमध्यकाल) में दांते ।

तीसरेकाल खंड या उत्तर मध्यकाल के अंतर्गत 15वीं -16वीं के पुनर्जागरण काल में मार्काबोदो, त्रिसीनो, टेबेल दोले, सर फिलिप्स सिडनी आदि आलोचक हैं । 17-18वीं शती में बेन जानसन, ड्राइडेन, बर्क, डेनिस, एडीसन, पोप, एडवर्डयंग, रिचर्डहड, सैम्युअल जानसन आदि साहित्यशास्त्री हैं । आधुनिक काल में (19वीं शती के बाद) विकेलमेम, लेसिंग, गेटे, वर्ड्सवर्थ, कोलरिज, शैली, मैथ्यू अर्नाल्ड, वाल्टर पेटर, टॉलसटाय आदि स्वच्छंदतावादी आलोचक । 20वीं शताब्दी में क्रोचे, आई.ए.रिचर्डस, टी.एस. इलियट, कार्लमार्क्स आदि प्रमुख साहित्य समीक्षक हैं ।

पाश्चात्य साहित्य का इतिहास बहुत पुराना है । कभी-कभी कतिपय विद्वान अंग्रेजी साहित्य को पाश्चात्य साहित्य का मूल समझने की भूल कर बैठते हैं । वास्तव में पाश्चात्य साहित्य का मूल प्रामाणिक उद्गम यूनान या ग्रीस है । अंग्रेजी साहित्य का इतिहास मुश्किल से सात आठ सौ वर्ष प्राचीन है । परंतु पाश्चात्य साहित्य का इतिहास ढाई हजार वर्ष से भी पुराना है । इस प्रकार प्राचीन पाश्चात्य आलोचना का प्राचीनतम रूप होमर के महाकाव्य 'इलियड' और 'आडेसी' में मिलता है ।

वस्तुत: होमर के समृद्ध काव्य को देखकर यह भी अनुमान किया जाता है कि होमर के पूर्व भी यूनान में साहित्य-सृजन होता रहा है । लेकिन होमर के पूर्व की कृतियाँ उपलब्ध नहीं हैं । होमर के साहित्य सिद्धांतों का भी कोई विवरण स्वतंत्र रूप से उपलब्ध नहीं होता और 'इलियड' एवं 'आडेसी' नामक ग्रंथ को संस्कृति के परिचय की दृष्टि से भी असाधारण महत्व माना जाता है । होमर काव्य का ध्येय आनन्द प्रदान करना ही मानते हैं । होमर के पश्चात हेसियड, पिंडार, गोर्जियास और एरिष्टोकेनिज आदि विचारकों ने भी प्राचीन यूनानी आलोचना साहित्य को विकसित किया क्योंकि युनान के प्राचीन चिंतकों में सुकरात(Socrates) का विशिष्ट स्थान माना जाता है । जिनका समय 469ईपू. से लेकर 399 ई. पूर्व तक माना जाता है । सुकरात एक संत महात्मा, दार्शनिक, चिंतक और तार्किक व्यक्ति थे, इसलिए काव्यशास्त्र संबंधी उनके कोई प्रत्यक्ष विचार नहीं मिलते । उनका विश्वास था कि शिक्षा सद्गुणों का विकास करती है । ज्ञान वास्तव में सद्वृत्ति ही है । मनुष्य को प्रेरणा अपनी आत्मा की आवाज से लेनी चाहिए । सत्य ही शिव है और सुन्दर भी । अपने जीवन और उपदेशों से सुकरात ने नैतिकता, सदाचार एवं सच्चाई के ज्ञान पर बल दिया तथा अपने युग के युवकों में नैतिक संस्कार डाले जिसके परिणाम स्वरूप साहित्य में मनोरंजन की अपेक्षा सचाई और नैतिकता का महत्व बढ़ा । साधारणत: सुकरात ने नीति, ज्ञान, धर्म, दर्शन और राजनीति आदि के संबंध में विचार व्यक्त किये हैं तथा यूनान में नीति परक आलोचना के विकास का श्रेय सुकरात को ही दिया जाता है । परंतु उनका चिंतन उनके पट्टशिष्य प्लेटो के माध्यम से सामने आया वह एक आदर्शवादी विचारक, राजनीतिक और दार्शनिक थे । उनके आदर्श राज्य की कल्पना सुप्रसिद्ध है ।

क) प्लेटो का काव्य सिद्धांत

1.2 प्लेटो पाश्चात्य आलोचना के आदि आचार्य हैं :

प्लेटो का समय 427 ई.पू. से 348 ई.पू. तक माना जाता है और यूनान के प्राचीन दार्शनिकों एवं मर्मज्ञों में उनका सर्वोच्च स्थान है । प्लेटो सुकरात के प्राणदंड के पश्चात व्यावहारिक राजनीति छोड़कर राजनीति दर्शन की ओर मुड़े । वास्तव में दर्शनशास्त्र के प्रकांड पंडित थे । पलेटो उनकी दार्शनिकता उनके गुरु सुकरात के दर्शन से पूर्ण प्रभावित थी । उनका ग्रंथ 'रिपब्लिक' राजनीति चिंतन और आदर्श राज्य का एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है । उनके अधिकांश ग्रंथ संवादों या कथोपकथनों के रूप में हैं, यह निश्चित नहीं कि उनका जन्म 'एथेन्स' या 'एजिना' में हुआ । उनके पिता 'अरिस्टोन' और माता 'पेरिक्टियोन' थीं, पिता और माता दोनों के परिवार एथेन्स के सुप्रसिद्ध परिवार थे । माता के भाई बंधु सुकरात के मित्र थे । संभवत: इसी कारण प्लेटो महान दार्शनिक सुकरात के इतने निकट रहे तथा उनके विचारों और तथा -पद्धति से इतने अधिक प्रभावित हुए । सुकरात को नवयुवकों को मार्गभ्रष्ट करने के अपराध में मृत्यु दंड दिया गया । प्लेटो ने सुकरात के कारावास से बाहर निकल जाने की पूरी व्यवस्था कर ली थी, पर सुकरात ने उसे स्वीकार नहीं किया और यह कहा कि राजकीय कानून हमारे ही बनाये हैं और वे खड़े होकर हमें धिक्कार रहे हैं कि "तुम्हीं ने हमें बनाया और तुम्हीं हमें अपमानित कर रहे हो ।" मेरे पास उनके लिए जवाब नहीं है, ऐसा कहकर सुकरात ने विष का प्याला पी लिया । सुकरात की मृत्यु के पश्चात प्लेटो को विश्वास हो गया सक्रिय राजनीति में हमारा कोई स्थान नहीं है । सुकरात के प्राण दंड के उपरान्त प्लेटो एथेन्स के बाहर चले गये और मिस्र, सिसली, इटली और यूनान के अनेक स्थानों की यात्रा की । यात्रा के दौरान लोगों के विलासी जीवन को देखकर उनके मन में विरक्ति जाग्रत हुई और एथेन्स लौटकर उन्होंने ई.पू. 387 में 'अकादेमी' की स्थापना की । जिसे यूरोप का सर्वप्रथम विश्वविद्यालय कहलाने का श्रेय प्राप्त है । जिसका उद्देश्य दार्शनिक और वैज्ञानिक अनुसंधान का व्यवस्थित विकास करना था । अपने जीवन के शेष 40 वर्ष प्लेटो 'अकादेमी' में ज्ञान-विज्ञान के अध्ययन -अध्यापन और शोध-कार्यों का संचालन करते रहे । उनके कुल 36 ग्रंथ माने जाते हैं जिनमें 23 संवाद (Diolagues) और 13 आलेख या पत्र हैं । इनमें दर्शन, विज्ञान और राजनीति पर चिंतन और दार्शनिक प्लेटो के विचार प्रकट हुए । इनमें 'पोलिटिया' (दि रिपब्लिक) और 'नोमोइ' (लॉज) अधिक महत्त्वपूर्ण हैं । काव्यशास्त्र पर प्लेटो ने अलग से नहीं लिखा, वरन् राजशास्त्र पर विचार करते हुए ही उन्होंने प्राय:

कवि, कलाकार और उनकी कलाओं पर अपना मत प्रकट किया है । वे कवि, कलाकार तथा उनकी कृतियों को राजनीति, शासन-व्यवस्था और नैतिकता के परिप्रेक्ष्य में ही देखते रहे । कलाओं के संबंध में उनके विचार 'आयोन' और 'रिपब्लिक' में पाये जाते हैं । प्लेटो के विचार से कवि तर्करहित होकर आवेग और भावनाओं से अपनी रचना करते हैं, अत: वे रचनाएँ वैज्ञानिक नहीं होती और समाज को उत्तेजित कर उसे अनैतिक तथा अनुशासनहीन बनाती है ।

1.3 युग परिचय :

प्लेटो (427ई. पू.-347 ई. पू.) का आविर्भाव ऐसे समय में हुआ था जिसे एथेन्स (यूनान) का पतनकाल कहा जाता है । युद्ध में पराजित एथेन्स अनेक कठिनाइयों से गुरते हुए शक्तिहीन हो चुका था । समाज में रुढ़िवादी कर्णधारों का बोलबाला रहा । चारों ओर आध्यात्मिक मूल्यों का विनाश और सर्वत्र अवसरवादिता, विश्वासघात का माहौल था । ज्यादातर लोगों की संख्या ऐसी थी जो दास थे और जिनकी पीड़ाएँ अकथनीय थीं । इन श्रमजीवी दासों के बल पर एथेन्स की सभ्यता और संस्कृति का निर्माण हुआ था । किन्तु ये लोग नागरिक जीवन में अधिकार पाने से वंचित थे । प्रजातंत्र के नाम पर राज्य सत्ता व्यापारियों और कुछेक कुलीनों के कब्जे में थी । उन्हें अपनी राज्य स्थापना में त्रुटियाँ दिखाई पड़ रही थीं । उन्होंने यह अनुभव किया कि यदि एथेन्स के निवासी मन से दृढ़ और शरीर से स्वस्थ होते तो उनकी पराजय न होती । उन्होंने अपने पूरे चिंतन को इसी आधार पर व्यवस्थित किया । उन्होंने युवकों को दर्शन, संगीत और गणित की शिक्षा देने पर बल दिया । इसलिए अधिकांश विद्वानों का यह मत है कि प्लेटो का आदर्शवाद समकालीन सामाजिक पतन की गहरी प्रतिक्रिया का परिणाम है । प्लेटो की मूल दृष्टि आत्मवादी (Subjective) या प्रत्ययवादी(Idealist) थी अर्थात् उनके मत से यह विश्व और उसके सकल पदार्थ विश्व की विराट चेतना में प्रत्यय के रस में स्थित हैं । बाहरी संसार में हम जो कुछ देखते हैं वह उस अमूर्त प्रत्यय का मूर्त अनुकरण मात्र है । कविता बाह्य संसार से सामग्री ग्रहण करती है और इस सामग्री को ही संशोधित संपादित कर संयोजित करती है । अत: वह अनुकरण का अनुकरण होने के कारण सामान्यत: ग्रहणीय नहीं है । प्लेटो के मत से कविता में वैज्ञानिकता, तर्कसिद्धता और गहरी मानवीय सामाजिकता का अभाव होता है ।

प्लेटो का काव्यशास्त्रीय दृष्टिकोण

1.4 प्लेटो का काव्य सिद्धांत

1.4.1 अनुकृति सिद्धांत

प्राचीन यूनान में जिस अनुकरणात्मक सिद्धांत का प्रवर्तन होमर ने किया था उसका सबसे प्रबल तुष्टीकरण प्लेटो ने किया और इसी सिद्धांत को आधार बनाकर उन्होंने विविध विषयक विचार व्यक्त किये हैं । प्लटो दैवी प्रेरणा पर विश्वास करते थे । उन्होंने काव्य और कला को दैवी प्रेरणा का परिणाम माना है । उन्होंने अपने संवादों में अनेक स्थानों पर कवि के दिव्य 'पागलपन' (Divine Insanity) की चर्चा की है । उनका विचार है कि कवि के भीतर नयी उद्‌भावना और भावावेश कला से नहीं, वरन दैवी प्रेरणा से ही आविर्भाव होता है । उत्कृष्ट 'काव्य उच्च भावनाओं' उच्च विचारों और ज्ञान का संचार करता है । अत: वह समाज के लिए उपयोगी होता है । इसके विपरीत निम्न कोटि का काव्य अपने सामाजिक उत्तरदायित्व को नहीं निभाता और समाज में अनैतिकता और भ्रष्टाचार को फैलाता है तथा उच्च आदर्शों को क्षीण बनाता है । उनके प्रति अनास्था का भाव जगाता है । अत: समाज के लिए घातक है, वह ज्ञान , धर्म, नीति और ईश्वर-विरोधी होने से अग्राह्य है, पर इसका यह अर्थ नहीं है कि वे कवियों की निंदा करते हैं, वे उन्हें परमात्मा या दैवी भावना को व्यक्त करने वाला मानते हैं, वे उन्हें संतों और पैगंबरों की कोटि में रखते हैं और यह मानते हैं कि उनके माध्यम से परमात्मा स्वयं हमसे बात करते हैं । काव्य के संबंध में उनके विचार मुख्यत: उनकी कृतियों में बिखरे हैं । ये तीन कृतिया ँ हैं -

1) इयोन (Ion)

2) सिम्पोजियम (Symposium) और

3. रिपब्लिक (Repubic) ।

एक दार्शनिक के रूप में प्लेटो आदर्शवादी थे ।

सामान्यतया विचारक प्लेटो के काव्य संबंधी विचारों की विवेचना करते समय उनके द्वारा कविता पर लगाए गए आक्षेपों का अवश्य उल्लेख करते हैं । डॉ. रामदत्त भरद्वाज का यही मत है कि 'प्लेटो ने कविता पर दो आक्षेप किये हैं, प्रथमत: उनके अनुसार, कला प्रकृति की अनुकृति हैं,

बुद्धिपूर्ण अनुकृति द्वारा प्रकृति वस्तुओं की नकल यथावत सी होती है, चित्रकला इसका अच्छा उदाहरण है, उनके अनुसार यह दृश्यमान संसार (अर्थात् व्यवहार जगत) वास्तव वैचारिक (Idlia) जगत की प्रतिकृति है । उदाहरण स्वरूप जिस कुर्सी पर आप बैठे हुए हैं इसका निर्माण किसी बढ़ई ने उस आदर्श (नमूने) के अनुसार किया जो उसको दिया गया था । प्लेटो का तर्क इस प्रकार है यह व्यवहार जगत वास्तविक जगत की नकल है । चित्र के द्वारा उसकी नकल और भी अधिकतर नकल है । नकल तो नकल ही होती है । चित्रकला नकल की नकल है । अर्थात् दुगुनी नकल है, कोई भी कला नकल होने के कारण हेय है अतएव हमें उसकी ओर ध्यान नहीं देना चाहिए । द्वितीयत: कविता शृंगार और सौन्दर्य की भावना के कारण श्रेय से दूर रहती है, और करुणा आदि कटुभव चित्र को विगलित या उद्वेलित करते हैं, प्लेटो के लिए काव्य आकर्षक, सौन्दर्यपूर्ण , प्रेम या पवित्र होना कोई मूल्य नहीं रखता । उनके लिए साहित्य (कला) का मूल्य कवि तक है, जब तक मनुष्य को अच्छा नागरिक बनाने के लिए उपयोगी सिद्ध होता है । इसलिए उनका विचार है जब काव्य का आधार असत्य है, तो फिर उसकी सामाजिक उपादेयता का संदिग्ध होना स्वाभाविक है । इसलिए प्लेटो ने प्रतिपादित किया कि काव्य समाज के लिए हानिकार है जिसका आधार ही मिथ्या है, वह उपयोगी कैसे हो सकता है ? इसलिए प्लटो ने यह फतवा दे दिया कि आदर्श गणतंत्र में कवियों का कोई स्थान नहीं है, उसमें दार्शनिकों और विचारकों को महत्व मिलता चाहिए । गणितज्ञों को सम्मान मिलना चाहिए और संगीतज्ञों का आदर होना चाहिए । संगीत को प्लेटो ने इसलिए महत्त्व दिया कि उनके अनुसार संगीत मानसिक शक्ति प्रदान करता है । चूंकि आदर्श गणतंत्र में ऐसे नागरिक होने चाहिए जो शरीर और मन दोनों से सशक्त हों, इसलिए संगीतज्ञों को सम्मान मिलना चाहिए एवं यदि किसी काव्य में देवताओं की स्तुतियाँ अथवा श्रेष्ठ व्यक्तियों की प्रशस्तियाँ हों तो उसे स्वीकार कर लेना चाहिए ।

प्लेटो संगीत को बड़ा महत्त्व देते हैं । लय को वे एक नियमित गति मानते हैं, क्योंकि वह किसी सिद्धांत पर आधारित होती है । यही बात काव्य-रूप और शैली के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है । लय और काव्य-रूप, अच्छे भी होते हैं और बुरे भी होते हैं । प्लेटो का विचार है कि अच्छाई और बुराई का सम्बन्ध अच्छे चरित्रों और उनके उचित कार्यों से रहता है । अत: अच्छी रचना वही है जिसमें सच्चाई के साथ अच्छे चरित्र का वर्णन हुआ है ।

प्लेटो के काव्य विषयक चिंतन से यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने काव्य को हल्के मनोरंजन से अधिक महत्त्व उपदेशात्मकता को दिया । श्रेष्ठ काव्य वह नहीं है जो पाठकों का हलका मनोरंजन करके थोड़े समय का दु:ख प्रदान करता है, श्रेष्ठ काव्य वह है जो पाठकों में उदात्त भावनाओं को जागृत करके उनके चरित्र का निर्माण करता है । उन्होंने कविता का मुख्य प्रयोजन मानव चरित्र को

प्रभावित करता और उनका निर्माण करता है तथा आत्मा की प्रच्छन्न शक्तियों को प्रकाश में लाना ही स्वीकार किया है तथा कविता के माध्यम से मनुष्य को अपना जीवन श्रेष्ठतम बनाने और जगत के पुनर्निर्माण हेतु योग्य बनाने की ओर भी संकेत किया है । इसप्रकार प्लेटों ने काव्यकला को कठोर संयम और आत्मनियंत्रण पर आधारित माना तथा उसकी कसौटी सत्य बतलाया है ।

प्लेटो की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण देन यह है कि उन्होंने मनुष्य को चिंतन की दिशा में प्रेरित कर उसे आलोचना प्रणाली की ओर उन्मुख किया है ।

प्लेटो का और भी मानना है कि जब हम आपत्ति में फंसे होते हैं, दु:खी और शोकग्रस्त होते हैं, तब हम रोते और विलाप करते हैं । उसमें जो हमें सान्त्वना देता है और दु:ख को दूर करता है, उसका हम स्वागत करते हैं, दु:ख और शोक का शमन करना ही मानव को सुख-शांति देनेवाला तथा सत्कार्य में प्रवृत्त करने वाला होता है । पर कविता हमारी इस प्रकार के शोक, दु:ख, क्रोध की भावनाओं को और भी उभारती एवं उत्तेजित करती है, उनका शमन नहीं करती । वह अपनी मधुर शब्दावली और लयात्मक भाषा के प्रभाव से मनुष्यों को उद्दण्ड, असंयत, कामी, क्रोधी और झगड़ालु बनाती है जो किसी भी राज्य व्यवस्था के लिए हानिकारक है । हम उस कविता का स्वागत करते हैं जो आनन्द प्रदान करने के साथ-साथ लोगों में संयम, सद्भाव, नैतिकता और सदाचार को भी प्रेरित करे । उसका उद्देश्य लोगों की आत्मा में संयम और न्यायप्रियता, कर्त्तव्यनिष्ठा एवं सद्भावना के संस्कार डालना तथा अन्याय, असंयम, दुराचार और अपराध की प्रवृत्तियों को दूर करना है ।

प्लेटो ने कविता और कला में वस्तु के साथ-साथ उसके रूप (Form) को भी महत्त्वपूर्ण बतलाया है । काव्य में लय और छंद को भी विशेष महत्त्व देते हैं ; पर रूप के तत्वों, भाषा, लय तथा कथा का संगठन औचित्यपूर्ण और तर्कसंगत समीचीन होना चाहिए । यह उनका विचार है ।

इस प्रकार प्लेटो की काव्यशास्त्रीय दृष्टि, समाज-परक एवं नैतिक है । उनके विचार से न्याय, व्यवस्था, संयम, अनुशासन में उसका योगदान नहीं । अतएव प्लेटो का काव्य-नाटक विषयक विरोध साहित्येतर और नैतिक प्रतिमानों से प्रेरित है । उनके विचार से काव्य-सृजन एक प्रकार का ईश्वरीय उन्माद है, कवि उन्मात्त व्यक्ति है और काव्य-देवी द्वारा अंत:प्रेरित होकर रचना करता है । प्लेटो बारबार इस बात की ओर संकेत करते हैं कि साहित्य में मनुष्य के नैतिक पक्ष को संपन्न, समृद्ध और संतुष्ट करने की शक्ति होनी चाहिए । इस दृष्टि से वे नैतिकतावादी ही नहीं उपयोगितावादी भी हैं । उनकी दृष्टि में सुन्दर वही है जो सत्य और विश्वास से संपन्न है ।

1.5 अभ्यास के लिए प्रश्न :

1. प्लेटो के काव्य-प्रेरणा -सिद्धांत पर प्रकाश डालिए ।
2. प्लेटो का परिचय देते हुए उनके द्वारा कविता पर लगाए गए आक्षेपों पर विचार कीजिए ।
3. काव्य सत्य और अनुकरण के संबंध में प्लेटो के मत पर प्रकाश डालिए ।
4. प्लेटो के काव्य सिद्धांतों की सार्थकता. प्रासंगिता पर विचार कीजिए ।
5. अनुकरण सिद्धांत पर प्लेटो के विचारों पर प्रकाश डालिए ।

कुछ उपयोगी पुस्तकें :

1. देवेन्द्रनाथ शर्मा, पाश्चात्य काव्यशास्त्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
2. डॉ. भागीरथ मिश्र, पाश्चात्य काव्यशास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी -221001
3. डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त , भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धांत, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद -9
4. डॉ. अलका द्विवेदी, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धांत, साहित्य रत्नालय, गिलिश बाजार, कानपुर ।
5. डा. रामचन्द्र तिवारी , भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र की रूपरेखा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
6. डा. शांतिस्वरूप गुप्त, पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत, अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली ।
7. रामअवध द्विवेदी, साहित्य सिद्धांत, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना
8. डॉ. नगेन्द्र और डा. सावित्री सिन्हा(संपा.) पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परंपरा, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

***

ख) अरस्तू
अनुकरण सिद्धांत और त्रासदी

1.6 अरस्तू (Aristotiles) का व्यक्तित्व एवं दृष्टिकोण :

अरस्तू का जन्म 384 ई. पूर्व. में मकदूनिया के समुद्रतट पर स्थित यूनानी उपनिवेश में एक अत्यंत प्रतिष्ठित परिवार में हुआ । इस परिवार में वंश परंपरा से वैद्यकी चली आ रही थी । इनके पिता मकदूनिया के राजवैद्य थे ।

अरस्तू बाल्यकाल से ही अत्यंत मेधावी, कुशाग्रबुद्धि और विद्याव्यसनी थे । किशोरावस्था में एथेन्स जाकर वे प्लेटो के विद्यापीठ में दाखिल हो गए । वहाँ इन्होंने बीस वर्ष की आयु तक मुख्यत: दर्शन का अध्यापन किया । प्लेटो इनसे बहुत प्रभावित थे । वे एक ओर प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो के शिष्य थे, तो दूसरी ओर विश्वविजेता सिकन्दर महान के गुरु होने का गौरव भी उन्हें प्राप्त है । उन्होंने अपने जीव में लगभग चार ग्रंथों की रचना की जिनमें तर्कशास्त्र, भौतिकशास्त्र, मनोविज्ञान, ज्योतिषविज्ञान, राजनीति-शास्त्र, आचार-शास्त्र, काव्य शास्त्र आदि अनेक विषयों की सार -गर्भित विवेचना मिलती है । उनके साहित्य-संबंधी विचार 'काव्यशास्त्र' (Poetics) एवं भाषण-शास्त्र (Rheotorics) में उपलब्ध होते हैं । इनकी उपलब्ध रचनाओं में साहित्य से संबद्ध दो ग्रंथ हैं । इनमें से 'पेरिपोइतिकेस' काव्यशास्त्र से संबद्ध है और 'तेखनेस रितेरिकेस' भाषण-कला या भाषण-शास्त्र से संबद्ध है । जिसमें उनकी भाषा और अभिव्यक्ति पर विचार किया गया है ।

प्लेटो की साहित्य संबंधी मान्यताओं में उनके आदर्शवादी दार्शनिक दृष्टिकोण के कारण कई साहित्यिक सत्यों की उपेक्षा दिखाई देती है । इसलिए उन्होंने कवि और काव्य पर कई आक्षेप भी लगाए थे । अरस्तू की दृष्टि वस्तुवादी थी और उन्होंने साहित्यिक रचनाओं को सामने रखकर साहित्य की ही दृष्टिसे साहित्य का विवेचन किया । इस क्रम में उन्होंने अपने गुरु प्लेटो द्वारा कविता पर लगाए गए आक्षेपों का तो उत्तर दिया ही, कई मौलिक चिंतनों की भी स्थापना की । उन्होंने काव्य रचना के प्रेरक तत्वों, काव्य की प्रकृति, संरचना, प्रकार्य और प्रभाव सभी पर विचार किया और

इसमें भी सबसे अधिक बल त्रासदी पर दिया । प्लेटो से ग्रहण ज्ञान को भी उन्होंने अपने मौलिक विचारों की कसौटी पर कसकर ग्रहण किया । इसलिए वे काव्य पर प्लेटो द्वारा लगाए गए आक्षेपों का उत्तर भी दे सके । वास्तव में अरस्तू की प्रतिभा गहन, गंभीर, सारग्राहिणी तथा मौलिक थी । उनका दृष्यिकोण वैज्ञानिक था तथा बाह्य जगत की ठोस वास्तविकताओं पर आधारित था । उन्होंने साहित्य की संरचना तथा नियमों को स्थिर करके भावी साहित्य-सृजन के लिए भी दिशा का निधारण किया । काव्य के प्रसंग में अपने गुरु प्लेटो से उनकी असहमति का मुख्य मुद्दा तो यही था कि वे अनुकरण को निंदनीय या हीन नहीं मानते थे । इसके अतिरिक्त अनुकरण की प्रकृति को लेकर भी उनकी दृष्टि प्लेटो से भिन्न थी ।

1.7 अरस्तू के महत्त्वपूर्ण काव्य सिद्धांत :

अरस्तू के महत्वपूर्ण काव्य सिद्धांत त्रासदी के विवेचन क्रम में विकसित हुए हैं । अपने प्रसिद्ध ग्रंथ पोएसिस में उन्होंने ट्रेजेडी, एपिक(महाकाव्य) तथा कॉमेडी (सुखात्मक नाटक) की चर्चा अनुकरणात्मक काव्य के रूप में की है । तात्पर्य यह है कि उन्होंने काव्य के सभी रूपों को अनुकरणात्मक माना है । इन सभी रूपों में त्रासदी (ट्रेजेडी) को सर्वाधिक महत्व देते हुए उन्होंने इसका विस्तृत विवेचन पोएटटिक्स में चौदह अध्यायों (छठे से उन्नीसवें अध्याय तक) में किया है । त्रासदी के प्रयोजन की चर्चा के क्रम में ही उनका प्रसिद्ध विरेचन सिद्धांत सामने आया है । उनके काव्यचिंतन ने यूरोपीय काव्यशास्त्र पर सर्वाधिक प्रभाव डाला है । उनके द्वारा प्रतिपादित काव्य सिद्धांत आज भी प्रासंगिक है । इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि उन्होंने मानव-मनोविज्ञान और अंत:प्रकृति को दृष्टि में रखकर अपनी स्थापनाएँ की हैं, यों तो उनका पूरा काव्य-चिंतन महत्वपूर्ण है किन्तु जिन स्थापनाओं को लेकर विचारकों में सर्वाधिक चर्चा हुई है और जिनकी व्याख्याएँ विवादास्पद रही हैं, उनमें दो प्रमुख हैं -

1. अनुकरण सिद्धांत (Theory of Imitation)
2. विरेचन (Theory of Cahersis) का सिद्धांत ।

1.7.1 अरस्तू का अनुकरण सिद्धांत :

प्लेटो ने काव्य को जीवन का अनुकरण मानते हुए इस क्रिया के लिए ग्रीक शब्द 'मोमेसिस' का प्रयोग किया था । जिसका अंग्रेजी अनुवाद 'इमीटेशन' हुआ । हिंदी में 'इमीटेशन' का अनुवाद 'अनुकरण' किया गया है ।

'अनुकरण' की चर्चा करते समय प्लेटो की दृष्टि दार्शनिक और नैतिकतावादी थी और अरस्तू की सौन्दर्यशास्त्रीय । स्पष्ट है साहित्यशास्त्रीय चर्चा के लिए सौन्दर्य शास्त्रीय दृष्टि ही अधिक उपयुक्त है । अरस्तू की अनुकरण संबंधी मान्यताओं को साहित्यशास्त्र में इतना महत्व दिया जाता है, पर स्वयं उन्होंने इस अवधारणा तथा इसकी प्रकृति की स्पष्ट व्याख्या नहीं की है, या हम कह सकते हैं कि उनके उपलब्ध साहित्य में कहीं भी स्वतंत्र रूप से इस पर विचार किया गया नहीं दिखाई देता है । इतना तय है कि पाश्चात्य साहित्यशास्त्र में 'अनुकरण' एक महत्वपूर्ण अवधारणा है ।

अरस्तू के अनुसार अनुकरण मानव स्वभाव की मूल प्रवृत्ति है । अनुकरण की शक्ति पशुओं में नहीं केवल मानवों में ही होती है और इसी के माध्यम से वे संसार का ज्ञान हासिल करते हैं । कविता का उत्स भी मानव की सहज प्रवृत्तियों का भी सहज संबद्ध है ।

अरस्तू ने कला को 'प्रकृति की अनुकृति' ही माना है । उनके लिए अनुकरण प्रकृति के बाह्य रूपों का नहीं, बल्कि उसकी सर्जन प्रक्रिया का अनुकरण है । यह बाह्य जगत से सामग्री चुनता है और उसे अपने तरीके से छाँटकर और तराश कर इस प्रकार पुन: संयोजित करता है कि वह कलात्मक अनुभूति को जन्म देती है । इसके लिए उसे विशिष्ट संवेदनशीलता और कल्पना का सहारा भी लेना पड़ता है । प्रकृति में जो कुछ अपूर्ण रह जाता है उसे वह पूर्ण रूप से प्रस्तुत कर सकता है और इस प्रकार वह प्रकृति का भी अतिक्रमण कर जाता है । अत: अनुकरण की प्रक्रिया को अरस्तू सामान्य नकल से ऊपर और सर्जनशीलता मानते थे ।

" अरस्तू अनुकरण को काव्य का साधक ही नहीं काव्य के आनन्द का नियोजक भी मानते हैं । आनन्द को वे काव्य का मुख्य प्रयोजन मानते हैं । काव्य अनुकरण के माध्यम से रचा जाता है इसलिए उसमें बाह्य संसार का चित्रण भी होता है । काव्य का आस्वाद करते हुए श्रोता/पाठक को जब उसमें अपने जाने-पहचाने संसार की झलक मिलती है तो उसे एक विशेष प्रकार का आनन्द होता है - प्रत्यभिज्ञान या पहचान का आनन्द । यह अनुकरण की वजह से ही हो पाता है ।

अरस्तू के अनुसार काव्य की विषयवस्तु का चित्रण तीन रूपों में हो सकता है :

1. प्रतीयमान - अर्थात् वस्तुएँ वास्तव में जैसी हैं या दिखाई देती हैं ।
2. संभाव्य - अर्थात् वस्तुएँ जैसी हैं नहीं, मगर हो सकती हैं ।
3. आदर्श - अर्थात् वस्तुओं को जैसा होना चाहिए ।

कविता जहाँ पहले वर्ग का चित्रण करती है, वहाँ उसे यथातथ्य अनुकरण माना जा सकता है । किन्तु दूसरे और तीसरे वर्ग में जिन स्थितियों का चित्रण होता है, वे वास्तविक जगत में नहीं होती । इसलिए उनके चित्रण में बाह्य जगत का अनुकरण करने का प्रश्न ही नहीं उठता । इनमें कवि

बाह्य जगत को आधार बनाता है किन्तु फिर कल्पना तथा आदर्श भावना का सहारा लेकर उस वस्तु का चित्रण इस प्रकार करता है कि वह बाह्य, इन्द्रियगोचर जगत की सीमा से बहुत ऊपर उठ जाती है, अरस्तू ऐसी रचनाओं को स्वीकृति देते हैं, इसीसे स्पष्ट हो जाता है कि वे अनुकरण को सर्जनात्मक मानते हैं ।

अनुकरण के संबंध में भी अरस्तू का दृष्टिकोण नैतिक और सामाजिक की अनेक्षा (जो प्लेटो का दृष्टिकोण है) सौन्दर्यषेस्त्रीय है । काव्य या कला प्रकृति की अनुकृति है, पर एकदम नकल न होकर उसका पुन: प्रस्तुतिकरण है । अत: काव्य या कला में उतारा हुआ प्रकृति का रूप, वास्तविक रूप की कमी को दूर कर उसे अधिक पूर्ण रूप प्रदान करता है । कवि या कलाकार प्रकृति के तीन रूपों में किसी का भी वर्णन करने में स्वतंत्र है -

1. जैसी वह है या दिखाई देती है ।
2. जैसी वह समझी जाती है और
3. जैसी उसे होना चाहिए ।

प्लेटो इसके तीसरे रूप को कला में स्थान देने के पक्षपाती थे, जबकि अरस्तू तीनों प्रकार के अनुकृत रूपों को मान्य करते हैं । अरस्तू के विचार से अनुकृति, वास्तव में कल्पना द्वारा जीवन की पुनः सर्जना है ।

अरस्तू ने कथानक के तीन प्रकार माने हैं - ऐतिहासिक, दंतकथा मूलक और कल्पित । इनमें ऐतिहासिक तथा दंतकथामूलक कथानकों की सामग्री तो रचनाकार बाह्य जगत से ले सकता है और इस प्रकार सामग्री लेने को अनुकरण भी उसकी अपनी सर्जनात्मकता से ही उपज सकता है । इतिहास तथा काव्य की तुलना करते हुए अरस्तू ने काव्य के सत्य को इतिहास के तथ्य से ऊँचा माना है Poetry is more philosophical an dhigher thing than his tory क्योंकि :

* इतिहास केवल उन्हीं घटनाओं का उल्लेख करता है जो घटित हो चुकी हैं जबकि काव्य संभाव्य तथा आदर्श स्थितियों का भी अंकन करता है ।

* इतिहास केवल बाह्य जगत की घटनाओं का उल्लेख तथा विवेचन करता है, इसलिए वह मात्र विशेष की ही अभिव्यक्ति करता है । इसके विपरीत काव्य का सत्य घटना विशेष कसीमित न रहकर 'सामान्य' होता है ।

* इतिहास वस्तुपरक होता है जबकि काव्य-रचना में अनुभूति तथा विचार का आश्रय लिया जाता है । इसके अतिरिक्त श्रेष्ठ काव्य में दर्शन तत्व की प्रधानता होती है ।

* 'पोयटिक्स' के पचीसवें अध्याय में व्यावहारिक आलोचना की समस्याओं पर विचार करते हुए अरस्तू ने चित्रकार अथवा किसी अन्य कलाकार की तरह कवि को भी अनुकर्त्ता माना है और उसके अनुकार्य का विवेचन करते हुए कहा है- ''चित्रक्कार अथवा किसी भी अन्य कलाकार की तरह कवि अनुकर्त्ता है । अतएव उसका अनुकार्य अनिवार्यत: इन तीन प्रकार की वस्तुओं में से ही कोई एक हो सकता है । जैसी वे थीं या हैं, जैसी वे कही या समझी जाती हैं अथवा जैसी वे होनी चाहिए । जभिव्यत्ति का माध्यम है भाषा- जिसमें प्रचलित ाब्द हो सकते हैं या अप्रचलित अथवा लाक्षाणिक भाषा में और भी कई प्रकार के रूपान्तर किए जा सकते हैं । जिनका अधिकार कवि को हैं ।''

इन सब बातों के आधार पर हम समझ सकते हैं कि अरस्तू काव्य को बाह्य-यथार्थ के अनुकरण मात्र रूप में नहीं देखते थे, यदि ऐसा होता तो काव्य तथा इतिहास में वे इतना फर्क न करते । उनके अनुसार काव्य में अनुभूति, कल्पना तथा दार्शनिकता का योग होता है और वह यथार्थ जगत की वस्तुओं तथा घटनाओं से आगे जाकर संभाव्यता का भी अंकन करता है, इससे यह स्पष्ट है कि उनकी दृष्टि में कवि/कलाकार अर्थात् अनुकर्ता बाह्यय जगत से प्राप्त विषयवस्तु में अपनी तरफ से भी बहुत कुछ जोड़ता है, इस प्रकार अनुकरण मात्र प्रतिबिम्ब का नहीं बल्कि सर्जना का व्यापार है ।

* अरस्तू ने इस बात की ओर ध्यान दिलाया कि बाह्य जगत में जो वस्तुएँ और स्थितियाँ हममें त्रास जगाती हैं, वे ही काव्य/नाटक में इस प्रकार प्रस्तुत की जाती हैं कि करुणा तथा आतंक का निराकरण करके वे हमें आनन्द प्रदान करती हैं । यह निराकरण 'विरेचन'(Catharsis) द्वारा संभव होता है । किन्तु दु:ख के माध्यम से आनन्द प्राप्त होने का विरोधाभास तभी समझा जा सकता है जब हम काव्य के आनन्द को यथार्थ जीवन के आनन्द से भिन्न और विशिष्ट मानें । यह विशिष्टता यथार्थ को ज्यों का त्यों प्रतिबिम्बित कर देने से नहीं आ सकती । रचनाकार की सर्जनशीलता रचना की विषयवस्तु को इस प्रकार संगठित तथा प्रस्तुत करती है कि श्रोता/पाठक/ दर्शक की अनुभूतियाँ विशेष प्रकार से जाग्रत और समाहित होती हैं । नाटक यथार्थ जीवन का अनुकरण करता है किन्तु उसके प्रभाव में यह विशिष्टता तभी आ सकती है जब यह अनुकरण कलात्मक और सर्जनात्मक हो । प्रसिद्ध समाचोलक स्कॉट जेम्स ने इसे जीवन का पुनर्निर्माण कहा है ।

* अरस्तू के अनुसार क्रियाशील मानव ही काव्य, अर्थात् अनुकरण का विषय होता हैं किन्तु उनका विवेचन यह भी संकेत करता है कि काव्य केवल बाह्य जगत में प्रत्यक्ष जीवन का ही नहीं बल्कि सूक्ष्म , अमूर्त, आंतरिक जीवन का भी अनुकरण करता है । जीवन का यह पक्ष बाह्य जगत में प्रत्यक्ष नहीं होता । अत: इसके अनुकरण में अनुकर्ता को अनुभूति और कल्पना का सहारा

लेना ही पड़ता है ।

अतएव उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि अरस्तू अनुकरण को काव्य का अनिवार्य तत्व मानते थे किन्तु यह मशीनी अनुकरण नहीं था । इसमें दर्शन और विचार तत्व, अनुभूति और कल्पना के योग से विशिष्ट सर्जनशीलता आ गई है ।

1.8 त्रासदी -विवेचन :

अरस्तू की साहित्य शास्त्रीय चर्चा में जिस विधा की बड़े विस्तार और गहराई से चर्चा मिलती है, वह है त्रासदी(Tragedy) । वस्तुतः अरस्तू के युग के पहले ही यूनान में त्रासदी का रस विकसित हो चुका था और वही अरस्तू के विवेचन का आधार बना ।

त्रासदी ग्रीक साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण विधा थी । प्राचीन यूनान में दिओनिसिअस देवता को प्रसन्न करने के लिए जो खेल-तमशे होते थे उन्हें ही ट्रेजेडी का मूल रूप कहा जाता है । यद्यपि प्लेटो आदि विचारकों ने भी ट्रेजेडी के संबंध में अपने विचार प्रकट किए हैं पर अरस्तू ने ही सबसे पहले ट्रेजेडी का गंभीर, विशद एवं सर्वांगीण विवेचन किया है और उनका यह विवेचन केवल मौलिक ही नहीं है अपितु आगामी विद्वानों को चिंतन और तात्विक विश्लेषण करने की प्रेरणा भी देता है । इस प्रकार अरस्तू ने पहली बार ट्रेजेडी की परिभाषा देते हुए कहा है - ''ट्रेजेडी एक ऐसे कार्य का अनुकरण है जो गंभीर है, स्वतः पूर्ण है और जिसका एक निश्चित आयाम है । यह अनुकरण एक ऐसी भाषा में होता है जो कलात्मक अलंकारों के हर प्रकार से सुसज्जित रहती है । कलात्मक अलंकारों के ये विविध प्रकार, विभिन्न भागों में पाये जाते हैं । यह अनुकरण करुणा और भय के संचार से मनोवेगों को उत्तेजित कर उनका उचित विरेचन करता है । अलंकृत भाषा से यहाँ तात्पर्य है ऐसी भाषा जिसमें लय, सामंजस्य और गीत का सामंजस्य हो । नाटक के विभिन्न भागों में पाये जाने का तात्पर्य है कि कुछ भागों में केवल पद्य के माध्यम का और गीत का प्रयोग किया जाता है ।''

प्रस्तुत परिभाषा के आधार पर हम त्रासदी की प्रमुखतः निम्न विशेषताओं को समझ सकते हैं :

* त्रासदी 'कार्य की अनुकृति' है ।
* इसमें वर्णित कार्य गंभीर होता है, स्वतःपूर्ण होता है । (अर्थात् पूर्ण होने के लिए उसे किसी अन्य तत्व पर निर्भर नहीं रहना पड़ता) , और उसका आयाम अर्थात् क्षेत्र तथा विस्तार निश्चित रहता है ।
* यह समाख्यानात्मक (वर्णनात्मक) रूप में नहीं, बल्कि कार्य व्यापार के रूप में प्रस्तुत की जाती है ।

* कार्य-व्यापार की प्रधानता होते हुए भी इसका माध्यम भाषा होती है और वह भाषा नाटक के लिए उपयुक्त अलंकारों से युक्त होती है ।

* इसमें करुणा और त्रास का उद्रेक होता है, और इस उद्रेक के द्वारा इन मनोविकारों का उचित विरेचन किया जाता है ।

1.8.1 अरस्तू ने त्रासदी के छः तत्व माने हैं -

1. कथानक(Plot)
2. चरित्र(Character)
3. विचार(Thought)
4. पदविन्यास(Diction)
5. दृश्य-विधान (Spectacle) और
6. गीत(Song) । इन सभी तत्वों का उन्होंने कमोबेश विस्तार से विवेचन किया है और इन सभी का संबंध अनुकरण से है ।

i) कथानक :

त्रासदी की विषयवस्तु ही कथानक है । जिसका अर्थ है घटना-विन्यास । अरस्तू ने त्रासदी में सबसे अधिक महत्व इसी तत्व को दिया है । त्रासदी कार्य की अनुकृति है और कथानक उसी कार्य-व्यापार को प्रस्तुत करता है । यह व्यक्ति-चरित्र का नहीं, घटनायुक्त जीवन के कार्य-व्यापार का, सुख-दुःखमय प्रसंगों का अंकन है । त्रासदी का प्रभाव कार्य-व्यापार पर ही निर्भर करता है । इसके अन्य सब तत्व भी कार्य-व्यापार के ही साधक हैं । चरित्र कार्य-व्यापार के माध्यम के रूप में ही आते हैं । चरित्रों के बिना त्रासदी की योजना हो सकती है, कार्य-व्यापार के बिना नहीं । त्रासदी -विवेचन में अरस्तू ने कार्य-व्यापार को प्रस्तुत करनेवाले तत्व कथानक पर सबसे अधिक बल दिया है । क्योंकि अरस्तू की मूल दृष्टि वस्तुपरक थी, वस्तुजगत तथा इसमें घटनेवाली घटनाओं के प्रति उनका झुकाव स्वाभाविक ही थी । दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि जिन त्रासदियों को सामने रखकर अरस्तू ने अपना काव्यशास्त्र रचा था वे भी कार्य-व्यापार प्रधान ही थीं । अरस्तू ने कथानक के तीन स्रोत या तीन प्रकार माने हैं - दंतकथामूलक, कल्पनामूलक एवं इतिहासमूलक । साथ ही शिल्प की दृष्टि से उन्होंने कथानक के सरल एवं जटिल नामक दो भेद किये हैं और कथानक में

अनुपातिक आवयविक संगठन के साथ-साथ एक निचित आयाम(Magnitude) भी आवश्यक माना है । इसी प्रकार उन्होंने कथानक में पूर्णता, एकान्वित संभाव्यता एवं आवश्यकता और सहज विकास नामक गुण आवश्यक कहे हैं ।

ii) चरित्र-चित्रण :

कार्य-व्यापार का निष्पादन चरित्रों के द्वारा होता है । इसलिए कथानक के बाद चरित्र ही उनकी दृष्टि में सबसे महत्वपूर्ण है । चरित्रांकन के लिए अरस्तू ने चार बातों का ध्यान रखने के लिए कहा है -

1) चरित्र भद्र होना चाहिए और उनके माध्यम से नैतिक उद्देश्य की अभिव्यक्ति होनी चाहिए
2) चरित्रों के अंकन में औचित्य या अन्विति का भी ध्यान रखा जाना चाहिए । (औचित्य या अन्विति का अर्थ है, किसी चरित्र में विसंगत या परस्पर विरोधी विशेषताएँ नहीं दिखाई जानी चाहिए ।)
3) चरित्रों में स्वभाविकता तथा संभाव्यता होनी चाहिए, अर्थात् जीवन के यथार्थ से उनका मेल हो ।
4) चरित्रों में आए परिवर्तन उनकी मूल प्रकृति के अनुरूप तथा स्वाभाविक हों ।

अरस्तू ने चरित्र-चित्रण के आदर्श एवं यथार्थ के कलात्मक समन्वय पर जोर देते हुए कहा है कि चरित्र यथार्थवत होता हुआ भी कलाकार की कल्पना एवं भावुकता से अधिक सुन्दर, नवीन, भव्य और मनमोहक बन उठे । अरस्तू के अनुसार त्रासदी के नायक को कुलीन , अत्यंत वैभवशाली, यशस्वी, समृद्ध तथा प्रभावशाली होना चाहिए ताकि उसका अपकर्ष वृहत्तर समाज को भी प्रभावित करे ।

iii) विचार :

अरस्तू ने विचार के अंतर्गत केवल बुद्धितत्व ही नहीं बल्कि भावतत्व को भी समेटा है । इसके अंतर्गत वक्ता के बौद्धिक चिंतन के तथा उसके वक्तण्यो के प्रमाण स्वरूप तर्क भी जिसका साधान वाणी या भाषा है और विचारों को व्यक्त करने वाली भाषा भी विशिष्ट होनी चाहिए । भाव के स्तर पर यह करुणा, त्रास, क्रोध आदि की व्यंजना करता है और उनका मूल्यांकन भी ।

iv)पदविन्यास :

अरस्तू के युग में वक्तृत्व कला इतनी महत्वपूर्ण मानी जाती थी कि इसका विकास एक शास्त्र के रूप में हो गया था । त्रासदी में जो विचार तत्व निहित होता था उसे अभिव्यक्ति करने का माध्यम भी भाषा ही है । अरस्तू के अनुसार पदविन्यास का अर्थ था शब्दों द्वारा अर्थ की अभिव्यक्ति । जिस प्रकार त्रासदी के कथानक और चरित्र यथार्थ जगत से उठाए जाकर भी यथार्थ की अपेक्षा कुछ विशिष्ट होते हैं उसी प्रकार उसकी भाषा मूलत: प्रचलित भाषा होते हुए भी विशिष्ट होती है ताकि वह त्रासदी के विचारतत्व में निहित सत्य को अभिव्यक्त कर सके । वह भाषा अलंकृत होनी चाहिए, अर्थात् उसमें लय, सामंजस्य और गीत का समावेश हो । वह प्रसाद गुण संपन्न, प्रसन्न, समृद्ध और उदात्त होनी चाहिए ।

i

v) दृश्य -विधान :

त्रासदी के कार्य -व्यवहार का संचालन यदि चरित्रों के माध्यम से होता है तो उनकी प्रस्तुति दृश्य-विधान के माध्यम से । दृश्य -विधान का अर्थ है रंगमंचीय साधनों का कुशल प्रयोग । पर अरस्तू ने रंगमंचीय साधनों को अनिवार्य नहीं माना ।

vi) गीत :

अरस्तू गीत को त्रासदी का अनिवार्य अंग मानते हैं । ग्रीक नाटकों में गायकों का समूह होता था जो कोरस ' कहलाता था । ग्रीक नाटकों में वृंदगान (समूह गान) करने वाले इस 'कोरस' की महत्वपूर्ण भूमिका होती थी । उनके अनुसार नाटक में वृंदगान का महत्व किसी पात्र से कम नहीं है । वह नाटक में आनन्द तथा गंभीरता की सृष्टि करता है । और उसके प्रभाव की वृद्धि करता है ।

अरस्तू ने सभी विधाओं में त्रासदी को सर्वोच्च स्थान दिया है । कामदी, महाकाव्य आदि अन्य विधाओं पर बातचीत में भी उन्होंने त्रासदी को ही संदर्भ बनाया है ।

त्रासदी की भाँति कामदी भी एक नाट्यविधा है किन्तु वह जिस यथार्थ का चित्रण करती है वह सामान्य से नीचे दर्जे का होता है ।

अरस्तू ने त्रासदी को महाकाव्य से श्रेष्ठ माना । इसका एक आधार यह था कि महाकाव्य का फलक बहुत विस्तृत होता है और उसकी कथा में अनेक प्रासंगिक कथाएँ गुंथी रहती हैं । इसलिए उसकी कथा और प्रभाव में बिखराव आ जाता है । इसके बिपरीत त्रासदी का कथापट संक्षिप्त तथा सुगठित होता है । गद्यकाव्य की अनेक आधिकारिक -प्रासंगिक कथाओं में से कोई एक त्रासदी का

विषय बन सकती है । इसलिए त्रासदी में महाकाव्य की अपेक्षा अधिक सुगठन तथा अन्विति दिखाई देती है । इसलिए उसका प्रभाव भी अधिक सघन होता है ।

1.9 अभ्यास के लिए प्रश्न :

1. प्लेटो एवं अरस्तू की विचारधारा के अंतर को स्पष्ट करते हुए दिखलाएँ कि अरस्तू ने प्लेटो के आक्षेपों का समाधान कैसे किया है ?
2. अरस्तू के अनुकरण -सिद्धांत पर प्रकाश डालिए ।
3. 'अनुकरण' के संबंध में प्लेटो तथा अरस्तू की मान्यताओं का अंतर स्पष्ट कीजिए ।
4. अरस्तू के अनुसार 'त्रासदी' की परिभाषा देते हुए त्रासदी के प्रमुख तत्वों का निरूपण कीजिए ।
5. अरस्तू के अनुसार कथानक के महत्व और उसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालिए
6. अरस्तू के अनुसार त्रासदी में चरित्रांकन के आधशरभूत सिद्धांत क्या हैं । त्रासदी के नायक के चरित्रांकन में वे किन बातों का ध्यान रखना जरूरी मानते हैं ।
7. 'विरेचन' पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए ।

कुछ उपयोगी पुस्तकें :

1. डॉ. नगेन्द्र, अरस्तू का काव्यशास्त्र, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय
2. डॉ. देवेन्द्रनाथ शर्मा, पाश्चात्य काव्यशास्त्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
3. रामचन्द्र तिवारी ; भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र की रूपरेखा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद -1
4 डॉ. रामअवध द्विवेदी, साहित्य सिद्धांत, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना
5. डॉ. नगेन्द्र और डा. सावित्री सिन्हा(संपा.) पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परंपरा, हिन्दी माध्यम कार्यालय निदेशालय, दिल्ली विवविद्यालय, दिल्ली ।

UNIT - II

आइ.ए. रिचर्ड्स और क्रोचे

2.0 आई.ए. रिचर्ड्स का जीवन परिचय

2.1 रिचर्ड्स का सिद्धान्त

2.1.1 संप्रेषण

2.2 रिचर्ड्स का मूल्य- सिद्धान्त

2.3 व्यावहारिक आलोचना-संबंधी सिद्धांत

2.4 अभ्यास प्रश्न

2.5 बेनेदेतो क्रोचे

2.6 क्रोच का सिद्धान्त

2.7 क्रोचे की धारणाएँ

2.8 अभ्यास प्रश्न

UNIT - II

क)आई. ए. रिचर्ड का सिद्धांत और व्यावहारिक आलोचना

2.0 रिचर्ड्स का जीवन परिचय :

आई.ए. रिचर्ड्स (IVory Armstrong Richards) 1839-1979 :

रिचर्डस का जन्म 26 जनवरी 1839 ई में हुआ तथा मृत्यु 7 सितम्बर 1979 ई. में हुई । वे जीवन भर आलोचना -शास्त्र को व्यवस्थित रूप देने में प्रयासरत रहे । इनकी शिक्षा क्लिक्टन और कैम्ब्रिज में हुई थी । इन्हें कैम्ब्रिज और पेकिंग(चीन) के विश्वविद्यालय में नियुक्ति मिली थी । कुछ समय कार्य करने के उपरांत ये 1944 से 1963 तक हार्वर्ड विश्वविद्यालय में अंग्रेजी विषय के प्रोफेसर रहे । इनके केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में अध्यापन का बड़ा प्रभाव पड़ा । इनके अध्यापन में मनोविज्ञान एवं अर्थविज्ञान का विशेष योगदान था । इन्होंने यद्यपि अनेक ग्रंथ लिखे, पर उनमें से प्रमुख हैं -

प्रिंसिपल्स ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म (1924), प्रैक्टिकल क्रिटिसिज्म (1929), फिलासफी ऑफ रिटोरिक (1936), हाउ टु रीड ए पेज (1942), साईंस एण्ड पोरट्री आदि

2.1 रिचर्ड्स का सिद्धान्त

आधुनिक समीक्षा एवं साहित्य -चिंतन के क्षेत्र में रिचर्ड्स का महत्त्वपूर्ण स्थान है, वे मनोविज्ञान के परिप्रेक्ष्य में कविता और कला की सार्थकता और महत्व पर अपने विचार प्रकट किये हैं । वे मौलिक विचारक माने जाते हैं । उन्होंने डॉ. ब्रेडले के कला, कला के लिए ' सिद्धांत का खंडन किया और अपने मूल्य-सिद्धांत की स्थापना की है ।

उनका मत है कि आज जब प्राचीन परंपरायें टूट रही हैं और मूल्य विघटित हो रहे हैं, तब सभ्य समाज कला और काव्य के सहारे ही अपनी मानसिक व्यवस्था और संतुलन बनाये रख सकता हैं । रिचर्ड्स के विचार से साहित्यालोचना का सिद्धांत दो स्तंभों पर टिका होना चाहिए । एक मूल्यों का लेखा-जोखा और दूसरा संप्रेषणीयता का आकलन । इसका यह अर्थ हुआ कि

कविता और कला में मूल्य और संप्रेषणीयता के गुण होने चाहिए । इन्हीं दो गुणों के आधार पर रिचर्ड्स ने मूल्य सिद्धांत और संप्रेषणीयता के सिद्धांत की स्थापना की । उनका विचार है कि यह एक गंभीर त्रुटि है कि सौन्दर्यशास्त्र के प्रसंग में मूल्य -संबंध विचार की अपेक्षा की जाती है । यह एक अलग बात है कि उसका केवल मूल्य की दृष्टि से विचार किया जाय, उससे तो बड़ा अनर्थ हो सकता है । परंतु यह तथ्य भी अप्रासंगिक नहीं है कि कला संबंधी कुछ अनुभव सचमुच मूल्यवान होते हैं । आधुनिक सौन्दर्य शास्त्र यह मानकर चलता है कि जिसे हम सौन्दर्यानुभूति कहते हैं, वह एक मानसिक क्रिया है । इससे सौन्दर्यानुभूति अवस्था की हवाई समस्या उत्पन्न होती है जो सत्यं, शिवं, सुन्दरम् की अरूप खोज की पुरानी परंपरा कही जा सकती है । वास्तविकता यह है कि सभी प्रकार के अनुभव कला-मूल्यों के साथ जुड़े रहते हैं । सौन्दर्य के गुण, अनेक कारणों से उद्‌भूत होते हैं । सौन्दर्यानुभूति विशिष्ट और विलक्षण होती है, यह विशिष्ट अनुभूति अन्य अनुभूतियों से भिन्न होती है, यह मानते हुए भी यह देखा जाता है कि सौन्दर्य का अनुभव, मूल्य के साथ भी जुड़ा है ।

रिचर्ड्स के विचार से मन में संवेगों(Impulses) का उतार-चढ़ाव होता रहता है, जिससे उसमें तनाव या विषमता उत्पन्न होती रहती है । काव्य और कला इन संवेगों में संगति और संतुलन स्थापित करती है । वे संवेगों को व्यवस्थित कर स्नायु -व्यवस्था को सुख पहुँचाती है । सौन्दर्य इसलिए मूल्यवान है, क्योंकि वह विरोधी संवेगों से उत्पन्न विषमता में व्यवस्था और संतुलन स्थापित करता है ।

इन संवेगों की दो कोटियाँ हैं - एक काम्य और दूसरी अकाम्य या विरक्ति । प्रथम प्रकृतिमूलक है और द्वितीय निवृत्ति या विरक्तिमूलक । रिचर्ड्स के विचार से वे एषणायें (काम्य संवेग) अधिक महत्वपूर्ण है जो दूसरी एषणाओं को अवरुद्ध या नष्ट किये बिना अपना विकास करती हैं । मन की सबसे अधिक उत्तम स्थिति वह है जिसमें मानसिक क्रियाओं की सर्वोत्कृष्ट संगति स्थापित कम-से-कम होती है । कला और काव्य इस स्थिति के संपादन में सहायक होते हैं, क्योंकि वे -

1) संवेगों में संतुलन स्थापित करते हैं और तनाव को दूर करते हैं ।

2) वे हमारी अनुभूति और संवेदनाओं को व्यापक बनाते हैं । यह संतुलन की स्थिति बाह्य क्रियाओं को भी प्रेरणा देती है ।

रिचर्ड्स के विचार से काव्य या कला अपने में सीमित या एकांतिक नहीं होती । वे अन्य मानव-व्यापारों से संबद्ध होती है, उनसे पृथक या भिन्न नहीं । मनुष्य की जितनी भी क्रियायें और कार्य हैं उनमें कला-सर्जना सबसे अधिक मूल्यवान है । किसी भी मानव-कार्य का मूल्य इस बात पर निर्धारित किया जाता है कि वह कहाँ तक संवेगों के संतुलन और सुष्यवस्था उत्पन्न करने में सक्षम

है । यही रिचर्ड्स का मूल्य-सिद्धांत है । विज्ञान और साहित्य का भेद बताते हुए रिचर्ड्स ने कहा है कि प्रत्येक कथन में वस्तुओं का निर्देश किया जाता है । जब निर्दिष्ट वस्तुएँ सच्ची और वास्तविक होती है । और उनके बीच संबंध भी सच्चा होता है, तब वह कथन वैज्ञानिक होता है । इसके विपरीत जब कथन में निर्दिष्ट वस्तुओं का सच्चा होना महत्वपूर्ण न हो और उनके बीच निर्दिष्ट संबंध भी महत्वपूर्ण न हो, वरन इसके स्थान पर यह महत्वपूर्ण हो कि उनसे हमारे भाव और मनोवेग कहाँ तक जाग्रत होते हैं ; तो ऐसे कथन वैज्ञानिक न होकर साहित्यिक या कलात्मक होते हैं । कविता का संबंध बौद्धिक सत्य से न होकर रागात्मक संबंध से होता है । कविता का पाठक या श्रोता उन सभी कथनों को स्वीकार करता है जो रागात्मक स्तर पर है और भाव-दृष्टि से सही है - तथ्यात्मक दृष्टि से वे चाहे गलत ही क्यों न हो ।

रिचर्ड्स की दृष्टि से हमारे अनुभवों के दो स्रोत हैं - प्रथम बाह्य जगत्, दूसरी मानसिक अवस्थायें । विज्ञान का संबंध प्राय: बाह्य जगत् से होता है और साहित्य का मूलत: अंत:करण या मानसिक अवस्थाओं से । साहित्य का मूल्य इस बात से नहीं कि वह कितना बौद्धिक ज्ञान प्रदान करता है, वरन् इस बात से आँका जाता है कि उसमें भावों और संवेगों को जाग्रत करने और उनमें संतुलन स्थापित करने की कितनी क्षमता है ।

कला और कविता हमारी अनुभूतियों और संवेदनाओं को व्यापक बनाती हैं और इस प्रकार मानव-मानव के बीच संवेदनात्मक एकत्व स्थापित करती हैं । भारतीय दृष्टिकोण से इसे अनुभव का साधारणीकरण कह सकते हैं । रिचर्ड्स के अनुसार इस प्रकार का संतुलन और समन्वय ही कला के गुण हैं । यही उसका मूल्य है । यह कार्य,कला, सौन्दर्य के माध्यम से करती हैं ; क्योंकि वह उसी की अभिव्यक्ति है । सौन्दर्य जिससे उद्वेलित मन में शांति आ जाती है । इस संतुलन के कार्य को रिचर्ड्स ने सिंथेसिस कहा है । उनका विचार है कि सिनस्थीसिस ताजगी देती है, थकान नहीं ।

रिचर्ड्स का मुख्य सिद्धांत संप्रेषणीयता का है । वे संप्रेक्षण को अत्यंत महत्वपूर्ण मानते हैं । उनके विचार से संप्रेषण कला का तात्विक धर्म है । मानव सामाजिक प्राणी होने के कारण, बचपन से ही वह अपने अनुभवों का संप्रेषण करता चलता है । वह जो कुछ करता है दूसरों तक पहुँचना चाहता है । अत: किसी कलाकृति की उत्तमता की यही कसौटी है कि उसमें कलाकार जो कुछ कहना चाहता है वह दूसरों तक भलिभाँति पहुँचा सका या नहीं । इन्हीं संप्रेषणों के द्वारा ही मनुष्य को अपने परिवार और समाज से विचार, ज्ञान और अनुभूति प्राप्त होते रहते हैं । इसी संप्रेषण-शक्ति के कारण एवं इसीके माध्यम से मानव -समाज का सांस्कृतिक वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास हुआ है और होता जा रहा है । मस्तिष्क के विशिष्ट गुणों का बहुत बड़ा अंश इसके संप्रेषण माध्यम का यंत्र है । पर इस संप्रेषण क्रिया का सर्वाधिक उपयोग कला-कर्म में होता है । वास्तव में कलाएँ

संप्रेषण क्रियाओं के उत्कृष्ट चरण रस है । उसके संप्रेषण माध्यम का यंत्र है । पर इस संप्रेषण क्रिया का सर्वाधिक उपयोग कला-कर्म में होता है । इस संप्रेषण के तीन आधार हैं -

1. लय और छंद
2. शब्दावली और
3. बिम्ब-सृष्टि ।

संप्रेषणीयता किसी कलाकृति में प्रभावकारी तभी होती है जब कवि या कलाकार की अनुभूति व्यापक विस्तृत एवं मूल्यवान हो तथा अनुभूति के क्षणों में संवेगों की व्यवस्थित संघटना हो । साथ ही वस्तु या स्थिति के पूर्ण बोध के लिए कवि या कलाकार में जागरुक निरीक्षण शक्ति हो और उसके अनुभवों और सामाजिक के अनुभवों में सामंजस्य हो । जहाँ अंतर का अनुभव हो वहाँ कल्पना की सहायता से संप्रेषणीय बनाया जाय ।

रिचर्ड्स ने कल्पना के कार्यों पर भी सूक्ष्मता से विचार किया है । उनके विचार से यह कोई रहस्यमय शक्ति नहीं, वरन मन की अन्य क्रियाओं के समान ही होती है । कल्पना छ: विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होती है, जो हैं -

1. विश्व चक्षु बिम्बों की उत्पादन -शक्ति के रूप में
2. आलंकारिक भाषा के प्रयोग करने में ।
3. दूसरों की मन:स्थिति को पुन: प्रकट करने में ।
4. असंबद्ध तत्वों को एक साथ प्रस्तुत करने की सूझ के रूप में ।
5. अदृश्य तत्वों और निराकार वस्तुओं को प्रस्तुत करने में तथा
6. विपरीत या विरोधी गुणों के बीच सामंजस्य स्थापित करने में ।

कल्पना पुरानी और ज्ञात बातों के प्रस्तुतीकरण में भी ताजगी और नव्यता ला देती है ।

उनके मतानुसार कलाकार का कार्य उन अनुभूतियों का चित्रण करना और उन्हें चिरस्थायी बनाना है । जिसे वह मूल्यवान और रहने योग्य समझता है । वह समस्याओं से जूझने के लिए दृष्टि, शक्ति, और मार्ग भी स्पष्ट करता है । अत: कलाकार के लिए मनोवैज्ञानिक नीति या आचरण नियम आवश्यक है ।

कलाकार के कला-कर्म में या कविता रचना में चाहे उसका ध्यान संप्रेषणीयता की ओर रहे या न रहे मगर वह उस रचना कर्म में व्यस्त रहता है । जो उसे सुन्दर लगता है और उसे व्यक्तिगत संतोष प्रदान करता है । वह यह भी कह सकता है कि वह यह कार्य केवल अपने मनोरंजन के लिए

करता है । कलाकार सचेत रूप से संप्रेषण का ध्यान नहीं रखता है । फिर भी उसकी यह उपेक्षा संप्रेषण के महत्व को किसी भी प्रकार से कम नहीं करती वरन् जिस तन्मयता से कलाकार अपनी रचना करता है, उतनी ही उसकी संप्रेषणीयता अधिक प्रभावकारी होती है । कलाकार की संप्रेषण संबंधी अन्यमनस्कता या उपेक्षा से यह बात सिद्ध नहीं होती कि संप्रेषण उसका प्रमुख उद्देश्य नहीं है । मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह भी एक प्रश्न उठता है कि संप्रेषण, कलाकार का सीधा उद्देश्य नहीं, तो क्या उसका यह उद्देश्य नहीं हो सकता कि वह कुछ ऐसी रचना करे जिसमें संप्रेषण की विशिष्ट क्षमता हो । कुछ लोगों के अ मरता या व्यापक यश आदि उद्देश्य हो सकते हैं । महत्वपूर्ण बात यह है कि प्राय: कलाकार की संप्रेषण क्षमता उसके कलाकृति के प्रति संतोष और उसके ठीक होने की भावना पर निर्भर करती है । वास्तविकता तो यह है कि कवि की सफल संप्रेषणीयता वही है, जब कि पाठक में भी कवि की संवेदना जाग जाये । परंतु इस कार्य के लिए कोई योजना नहीं बनायी जा सकती है । कविता और कला की अनुभूति की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि वह संप्रेषणीय होती है ।

2.1.1 संप्रेषण है क्या ? :

अब विचारणीय प्रश्न यह है कि संप्रेषण है क्या ? रिचर्डस का विचार है कि संप्रेषण तब होता है जब एक मस्तिष्क अपने पर्यावरण में इस प्रकार क्रियाशील होता है कि दूसरा मस्तिष्क उससे प्रभावित हो और उस दूसरे मन में जो अनुभूतियाँ जाग्रत हों, वे पहले मन की अनुभूतियों के समान हों और आंशिक रूप से, पहले के द्वारा प्रेरित हों । इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि संप्रेषण एक जटिल प्रक्रिया है और दोनों की अनुभूतियों में भेद हो सकता है, पर दोनों अनुभूतियाँ कुछ न कुछ समान हों और दूसरे के मन की अनुभूतियाँ किन्हीं अंशों में पहले की अनुभूतियों पर निर्भर द्वारा गद्य की अपेक्षा कठिन और अधिक गहरे संप्रेषण किये जाते हैं ।

रिचर्ड्स के विचार से संप्रेषण कलातात्विक धर्म है । कलाकार का अनुभव विशिष्ट और नव्य होने के कारण, उसकी संप्रेषणीयता, समाज के लिए मूल्यवान है । कलाकार की भी कसौटी यही है कि वह सपना अनुभव या उसका कोई अंश, दूसरों तक भली भाँति पहुँचा सके । जिनकी रचना में जितनी ही प्रबल और प्रभावशाली संप्रेषणीयता होती है, वह उतना ही बड़ा कवि या कलाकार होता है । इस प्रकार संप्रेषण की प्रक्रिया कला-कृतियों में संपन्न होती है । यह प्रक्रिया जटिल होते हुए भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसी संप्रेषण के द्वारा ही कविता का आनन्द पाठक और श्रोता को मिलता है । कवि या कलाकार के विशिष्ट अनुभव संप्रेषण के द्वारा ही समाज को प्राप्त होते हैं जिससे ज्ञान और संस्कृति का विकास होता है, संकीर्णता और स्वार्थ दूर हटता है तथा मानव संवेदना परिस्कृत होकर व्यापक और उदात्त बनती हैं । अत: कलायें संप्रेषण का प्रभावशाली

माध्यम बन गयी हैं ।

रिचर्ड्स का विचार है कि काव्य की भाषा रागात्मक (Emotive) होती है, तथ्यात्मक (Referential) कवि वैज्ञानिक की भाँति तथ्यों की खोज नहीं करता वह विशिष्ट चित्तवृत्तियों और रागात्मक अवस्थाओं का चित्रण करता है । अत: काव्य की भाषा ऐसे प्रतीकों का समूह होती है, जो श्रोता के मन में अनुरूप भाव उत्पन्न कर सके । वह लयात्मक होती है । छंद की कनि नियमबद्धता न होने पर भी उनमें लय आवश्यक है । उससे संवगों (Impulses) को जाग्रत करने में सहायता प्राप्त होती है ।

इस प्रकार रिचर्ड्स ने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से काव्य और कला की प्रकृति और कार्य का विश्लेषण कर अपने समय में उठी शंकाओं का समाधान किया तथा काव्य और कला के शाश्वत मूल्य, सामाजिक महत्व और उसकी अखंडता को रेखांकित किया । उनका 'मूल्य सिद्धांत' और 'संप्रेषणीयता का सिद्धांत' किसी भी कलाकृति की वस्तु पक्ष और कलापक्ष की विवेचन के लिए मार्ग प्रशस्त करने वाला है ।

2.2 आई.ए. रिचर्ड्स का मूल्य- सिद्धान्त :

आधुनिक समीक्षा और साहित्य के -चिन्तन के क्षेत्र में आइ.ए. रिचर्ड्स का महत्त्वपूर्ण स्थान है । वे मनोविज्ञान के क्षेत्र से साहित्य में आये, अत: उन्होंने मनोविज्ञान के परिप्रेक्षय में कविता और कला की सार्थकता और महत्त्व पर अपने विचार प्रकट किये हैं । ये मौलिक विचारक माने जाते हैं । उन्होंने डॉ. ब्रैडले के 'कला, कला के लिए' सिद्धांत का खण्डन किया और अपने मूल्य-सिद्धांत की स्थापना की है ।

उनका मत है कि आज जब प्राचीन पम्परायें टूट रही हैं और मूल्य विघटित हो रहे हैं, तब सभ्य समाज, कला और कविता के सहारे ही अपनी मानसिक व्यवस्था और सन्तुलन बनाये रख सकता है । रिचर्ड्स के विचार से साहित्यालोचना का सिद्धांत दो स्तम्भों पर टिका होना चाहिए - एक मूल्य का लेखा-जोखा और दूसरा सम्प्रेषणीयता का आकलन । इसका यह अर्थ हुआ कि कविता और कला में मूल्य और सम्प्रेषणीयता के गुण होने चाहिए । इन्हीं दो गुणों के आधार पर रिचर्ड्स ने मूल्य-सिद्धांत और सम्प्रेषणीयता के सिद्धांत की स्थापना की । उनका विचार है कि यह एक गम्भीर त्रुटि है कि सौन्दर्यशास्त्र के प्रसंग में मूल्य-सम्बन्धी विचार की अपेक्षा की जाती है । यह एक अलग बात है कि उसका केवल मूल्य की दृष्टि से विचार किया जाय, उससे तो बड़ा अनर्थ हो सकता है । परन्तु यह भी तथ्य अप्रासंगिक नहीं है कि कला-सम्बन्धी कुछ अनुभव सचमुच मूल्यवान होते हैं । आधुनिक सौन्दर्यशास्त्र यह मानकर चलता है कि जिसे हम सौन्दर्यानुभूति कहते

हैं, वह एक मानसिक क्रिया है । इससे सौन्दर्यानुभूति-अवस्था की एक हवाई समस्या उत्पन्न होती है जो सत्यं, शिवं, सुन्दरम् की अरूप खोज की पुरानी परम्परा कही जा सकती है । इन तीन के सथ काण्ट की ज्ञान, अनुभूति और इच्छा के त्रय का भी स्मरण आ जाता है । उसी के आधार पर सत्य को ज्ञान, शिव को इच्छा और सौन्दर्य को अनुभूति से जोड़कर देखा जाने लगा, जो ठीक नहीं है । वास्तविकता यह है कि सभी प्रकार के अनुभव, कला-मूल्यों के साथ जुड़े रहते हैं । सौन्दर्य के गुण, अनेक कारणों से अद्‌भुत होते हैं । सौन्दर्यानुभूति, विशिष्ट और विलक्षण होती है । यह विशिष्ट अनुभूति अन्य अनुभवों से भिन्न होती है, यह मानते हुए भी यह देखा जाता है कि सौन्दर्य का अनुभव, मूल्य के साथ भी जुड़ा है ।

रिचर्ड्स का स्पष्ट मत है कि कलायें, हमारे संचित मूल्यों के भाण्डार होती हैं । वे असाधारण पुरुषों के जीवन के क्षणों से उद्भूत होती हैं और उन्हें चिरस्थायी बनाती हैं - उन क्षणों को जब अस्तित्व की बदलती हुई सम्भानाएँ स्पष्ट दिखायी देती है और जब उभरते हुए विभिन्न क्रिया-कलापों में एक सुन्दर समझौता हो जाता है - उन क्षणों को जब स्वार्थों की प्रकृत संकीर्णता या भ्रमपूर्ण उलझन एवं किंकर्त्तव्यविमूढ़ता तिरोहित हो जाती है और उसके स्थान पर जटिलतायुक्त मानसिक सन्तुलन आ जाता है । रचनात्मक क्षणों में कलाकृति के निर्माण में तथा सम्प्रेषणीयता के माध्यम की दृष्टि से, इस बात के तर्क प्राप्त किये जा सकते हैं कि मूल्य-सिद्धांत के बीच कला को बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए । अनुभव के मूल्यों के सन्दर्भ में उपलब्ध हमारे महत्त्वपूर्ण निर्णयों का कलायें लेखा प्रस्तुत करती हैं । यदि सही दृष्टि से देखा जाये, तो कलायें हमें यह निर्णय करने के लिए, उत्तम उपलब्ध आंकड़े प्रस्तुत करती हैं, कि हमारे कौन से अनुभव, अन्य अनुभवों से अधिक मूल्यवान हैं !

कुछ लोगों का यह मत है कि कला का सम्बन्ध नैतिकता से नहीं है, वह उसके क्षेत्र से बाहर की वस्तु है तथा कला के आलोचक का उससे कोई सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि नैतिकता को देखना या तो धर्म-गुरुओं का काम है या फिर पुलिस का । इसका तात्पर्य यह हुआ कि नैतिकता का कला से सम्बन्ध नहीं है और कला का नैतिकता से कोई सम्बन्ध नहीं है । परन्तु जब किसी कृति को देखा जायेगा या उसकी समीक्षा की जायेगी, तो किन्हीं मूल्यों को ही सामने रखकर किया जायेगा । वास्तव में एक आलोचक, मन की स्वस्थता से ऐसा ही सम्बन्ध रखता है, जैसा कि डाक्टर शरीर की स्वस्थता से । अत: उसका काम ही यह हो जाता है कि किसी कलाकृति के प्रभाव को देखे अगर उसका समाज पर अच्छा प्रभाव पड़ता है, तो निश्चय ही उस कलाकृति में मूल्यों का समावेश होगा । कविता का मूल्य, उसकी पाठक या श्रोता के मन को प्रभावित करनेवाली क्षमता से आंका जाता है । कविता या कला का काम मन को संतुलित करना है । मन, स्नायु सम्बन्धी व्यवस्था उत्पन्न

करती है, वही प्रेरणा या आनन्द प्रदान करती है और वही कल्याणकारी भी है । अत: कला का मूल्य से अटूट सम्बन्ध है, क्योंकि मूल्य हमारे उत्तम एवं प्रेरक अनुभव ही होते हैं ।

रिचर्ड्स के मत से मन के भीतर आवेगों या वृतियों (Impulses) में उतार-चढ़ाव, जीवन की परिस्थितियों या संघर्षों के कारण होता रहता है । इससे मन में तनाव या विषमता उत्पन्न होती रहती है । काव्य और कलायें इन आवेगों में संगति और सन्तुलन स्थापित करती है और आवेगों को व्यवस्थित कर स्नायुमण्डल को केवल राहत ही नहीं देती, वरन् सुख भी पहुँचाती हैं ! सौन्दर्य इसीलिए मूल्यवान है, क्योंकि यह विरोधी मनोवेगों से उत्पन्न विषमता में व्यवस्था और संतुलन कायम करता है । आवेगों की दो स्थितियां हैं - एक काम्य(वांछनीय) और दूसरी अकाम्य । यद्यपि मस्तिष्क में दोनों ही संतुलित रूप में रहती हैं, फिर भी काम्य आवेग(Impulses) वे हैं, जो स्थिरता, संन्तुलन और व्यवस्था स्थानित करते हैं । वे आवेग महत्त्वपूर्ण हैं, जो दूसरों को क्षति पहुँचाये बिना अपना विकास करते हैं । फिर भी मन की सबसे उत्तम स्थिति वह है जिसमें मानसिक क्रियाओं की सर्वोत्तम संगति रहती है तथा आवेगों का संघर्ष और विघटन कम होता है । बहुत अधिक सीमा तक कविता और कला, विशिष्ट सीमित अनुभवों के पूर्ण एवं व्यवस्थित विकास में योगदान देती हैं । वे आवेगों के बीच संन्तुलन स्थापित करती हैं । हमारी अनुभूतियों और संवेदनाओं को व्यापक बनाती हैं और इस प्रकार मानव-मानव के बीच संवेदनात्मक एकत्व स्थापित करती हैं । (भारतीय दृष्टिकोण से इसे अनुभव का साधारणीकरण कह सकते हैं ।)

रिचर्ड्स इस प्रकार का सन्तुलन और समन्वय कला का गुण मानते हैं । यही उसका मूल्य है । यह कार्य कला, सौन्दर्य के माध्यम से करती है, क्योंकि वह उसी की अभिव्यक्ति है । रिचर्ड्स के पूर्वोक्त विचारों की पुष्टि प्रसिद्ध दार्शनिक 'सन्तायन' के विचार से भी होती है, जो कहते हैं कि सौन्दर्य का काम समन्वय और संन्तुलन प्रदान करना है । जिससे उद्वेलित मन में शांति आ जाती है । इस सन्तुलन के कार्य को रिचर्ड्स ने सिन्थेसिस (Synthesis) कहा है । उनका विचार है कि सिन्थेसिस ताजगी देती है, थकान नहीं । सौन्दर्यानुभूति के सम्बन्ध में उनकी व्याख्या है कि सभी आवेग (Impulses) समन्वकारी या सम्मिलनवाले नहीं होते, क्योंकि जीवन में संघर्ष न केवल सम्भव है, वरन् सामान्य भी है । अत: एक ऐसी परिपूर्ण व्यवस्था अपेक्षित है, जिसमें आवेग को स्वतंत्र कार्य-कलाप की छूट हो, पर परस्पर सामंजस्य का रूप हो, जिसमें निराशा न आने पाये । इस प्रकार के संतुलन में यह चाहे कितना भी क्षणिक हो, हम सौन्दर्य की अनुभूति करते हैं । रिचर्ड्स के विचार से इस सन्तुलित स्थिति में बाह्य क्रियाओं को भी प्रेरणा मिलती है । वे कला को एकान्तिक या एकांगी नहीं मानते । काव्य और कलायें मानव के अन्य व्यापारों से सम्बन्ध हैं, उनसे भिन्न और पृथक् नहीं । किसी भी मानव-क्रिया का मूल्य इस बात से निर्धारित होता है कि यह किस सीमा तक मानव-

मनोवेगों में संतुलन और व्यवस्था उत्पन्न करने में सक्षम है और इस दृष्टि से कविता और कला-सर्जना सर्वाधिक मूल्यवान मानव-क्रियायें हैं । उनके मूल्य -सिद्धांत को 'सिन्थेसिस' का सामंजस्य या संतुलन का सिद्धांत भी कहा जा सकता है ।

2.3 आई.ए. रिचर्ड्स का व्यावहारिक आलोचना-संबंधी सिद्धांत :

व्यावहारिक समालोचना किसी सिद्धांत -विशेष पर आधारित नहीं रहती । आलोचना का उद्देश्य किसी भी काव्य -कृति के समस्त सौन्दर्य और विशेषताओं को स्पष्ट कर अनुभूतिगम्य बनाना है । सौन्दर्य और विशेषताओं के अनेक स्वरूप विकसित हुए, पर कोई एक उद्देश्य की पूर्णतया पूर्ति न कर सका ।

व्यावहारिक समीक्षा के सिद्धांत या नियमों के अनुसंधान की पूर्वगामिनी, आलोचना की एक सामान्य प्रक्रिया है जो इसको समुचित दृष्टि प्रदान करती है । इस प्रक्रिया को व्यवहार में लाने वाले अंग्रेजी के प्रसिद्ध समाचोलक और विद्वान आई.ए. रिचर्ड्स हैं । उन्होंने अपने ग्रंथ प्रौक्टिकल क्रिटिसिज्म (Practienl critictsm) में इस प्रक्रिया को स्पष्ट किया है और निष्कर्ष स्वरूप अपने विचार प्रस्तुत किये हैं । काव्य समीक्षा का व्यावहारिक रस न केवल साहित्यिक अभिरुचि के स्तर का एक लेखा प्रस्तुत करता है, वरन् वह मानव-अनुभूति और विचारों का एक स्वाभाविक इतिहास बन जाता है ।

व्यावहारिक समीक्षा -संबंधी प्रयोगों से यह बात स्पष्ट होती है कि भावों या विचारों का सहज और सरल प्रकाशन कितना कठिन है, साथ ही यह निस्कर्ष भी निकाला जा सकता है कि समीक्षा का प्रयास भी भावों और विचारों के आदान-प्रदान की सहजतम रीति निकालना है ।

व्यावहारिक समीक्षा के मार्ग में कठिनाइयाँ आती हैं । 'प्रथम कठिनाई' है कविता के वास्तविक अर्थ-गहण की । किसी भी छंद का यथार्थ तात्पर्य ग्रहण करना अत्यावश्यक है, क्योंकि अन्य बातें इसी पर निर्भर करती हैं । अधिकांश व्यक्ति कविता का अर्थ, सहज तात्पर्य नहीं समझ पाते और इसके परिणाम स्वरूप उसमें व्यक्त भावानुभूति ध्वनि और उद्देश्य को समझने में भी भ्रम कर बैठते हैं । यह भाव सरल, जटिल और क्लिष्ट सभी प्रकार की कविताओं के लिए सत्य बैठता है । किसी भी आलोचना या समीक्षा के लिए काव्य का अर्थ -ज्ञान तो प्रारंभिक आवश्यकता है ।

दूसरी कठिनाई तथ्य के ऐन्द्रिक प्रभाव के ग्रहण की । यह तो निर्विवाद तत्य है कि कविता में शब्दक्रम गद्य के शब्दक्रम से भिन्न होता है और उसका एक लयात्मक या ध्वन्यात्मक प्रभाव होता है । इस प्रभाव को ग्रहण करने के लिए हमारी श्रवण शक्ति की योग्यता आवश्यक है । लयात्मक प्रभाव को ग्रहण कर सकने वाले व्यक्तियों पर जो प्रभाव किसी छंद का पड़ सकता है वह

अन्यों पर नहीं ।

ऐन्द्रिक प्रभाव का दूसरा रस है दृश्य -दर्शन । इसका संबंध हमारी प्रत्यक्ष करने की शक्ति से है । कवि के भीतर प्रत्यक्षीकरण की शक्ति असाधारण रूप से विद्यमान होती है और प्रत्यक्षीकृत वस्तुओं का वर्णन करता है । परंतु प्रत्यक्ष करने का दृश्य- दर्शन की शक्ति सबमें बराबर या एक-सी नहीं होती । अत: इसके परिणाम -स्वरूप कविता में प्रस्तुत दृश्यों को हृदयंगम करने या उसके प्रभाव -ग्रहण के क्षेत्र में अंतर हो जाना स्वाभाविक है । कभी हम कवि द्वारा उद्दिष्ट प्रभाव से अधिक प्रभाव ग्रहण कर लेते हैं और कभी उस तक पहुँच ही नहीं पाते । इस प्रकार विभिन्न कोटि के व्यक्तियों द्वारा प्रस्तुत समीक्षाओं में भिन्नता होना स्वाभाविक है । इसके साथ एक बात और है । हमारे स्मृति पटल पर अनेक पूर्ववर्त्ती घटनाओं और दृश्यों के चित्र अंकित रहते हैं । कभी-कभी ऐसा होता है कि हम कोई पंक्ति पढ़कर अपनी स्मृति के संस्कारों के कारण, अपने अनुभूत किन्तु विषय से पूर्णतया अप्रासंगिक दृश्यों और अभावों में मग्न हो जाते हैं जैसे कि कविवर बिहारी ने कहा है 'मन है जात अजौं वहै वा जामुना के तीर' वैसे ही हम अपने किसी प्रिय कल्पना या सुधि से ओतप्रोत होकर और विषय से विच्छिन्न हो जाते हैं । यह भय, योग्यता या संस्कार की त्रुटि के कारण नहीं, वरन एक स्वाभाविक -सी बात है, परंतु इससे हम कविता की पंक्तियों का उद्दिष्ट या वांछित प्रभाव ग्रहण कर सकते यह भी सत्य है ।

इसके अतिरिक्त कभी-कभी ऐसा होता है कि संयोग से कवि उस भावना को प्रकट करता है जो हमारी अपनी भावना भी है । ऐसी दशा में हम उसे भावना से इतने अभिभूत हो जाते हैं कि वह कवि की न रह कर अपनी हो जाती है । आलोचना की दृष्टि से यह स्थिति भी आपत्तिपूर्ण है, क्योंकि ऐसी दशा में या तो हम कवि के साथ पक्षपात करेंगे या उसे कोई श्रेय न देंगे ।

आलोचना के क्षेत्र में भावुकता एक बहुत बड़ी कठिनाई है । इस भावुकता के वशीभूत होकर निश्चय ही या तो हम कुछ ऐसी अच्छाइयाँ देखने लगते हैं, जो उसमें है नहीं और या हम प्रसंग से पूर्णतया बहक जाते हैं, यहाँ पर यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि भावुक और भावक, सहृदय या समीक्षक में अंतर है । वास्तविक गुणों का समुचित ग्रहण और प्रशंसा भावक या सहृदय का काम है । जबकि भावुक अवास्तविक या काल्पनिक गुणों की प्रशंसा करता है । उसकी अभिव्यक्ति सदैव समीक्षा या आलोचना नहीं कही जा सकती ।

एक और बहुत बड़ी कठिनाई है सैद्धांतिक आग्रह । यह सैद्धांतिक आग्रह दो रूपों में देखा जा सकता है । प्रथम इस रूप में कि कविता में सत्य या जीवन के संबंध में क्या विचार प्रकट किये गये हैं । यदि पाठक या आलोचक किसी विशेष संप्रदाय, विचार या सिद्धांत का व्यक्ति है तो उस काव्य-खंड का मूल्यांकन उसके आधार पर करेगा । उसके होने पर उसकी प्रशंसा और न होने पर

निंदा की जा सकती है । अन्य सिद्धांत या विचारधारा के कारण उसे निकृष्ट बताया जा सकता है । शिल्प और शैली से संबंध सिद्धांतों में हम कविता के क्षेत्र में किसी एक का आग्रह कर सकते हैं । यदि उसमें वही शिल्प -विधि या शैली अपनाई गई है । तो वह हमें अच्छी लगती है और यदि नहीं अपनाई गई तो वह कविता हमें दोषपूर्ण लगती है । भारतीय काव्य-शिल्प विधि के अनेक रूप अलंकार, वक्रोत्ति, रीति, ध्वनि आदि हैं । यदि आज का काव्य हम उनमें से किसी कसौटी पर कसने लगें तो आवश्यक नहीं कि वह उसमें खरा ही उतरे ।

आज का काव्य आज के जीवन के अनुरूप और उससे संबंध रखता है । अत: इस प्रकार किसी शिल्प -सिद्धांत का आग्रह भी समीक्षा के लिए उचित नहीं है । इसके अतिरिक्त शिल्प-संबंधी बातें तो माध्यम मात्र हैं । अत: उन्हें साधन रूप में ही देखना आवश्यक है । साध्य तो कुछ और है वह उसके अंतर्गत व्यक्त विचार, भाव, जीवन, आदर्श, संस्कृति आदि कुछ हो सकता है । आलोचक को देखना यह है कि वह उद्देश्य किस प्रभाव के साथ अभिव्यक्ति पा सका है । इसीमें कवि की सफलता और कविता की उत्कृष्टता निहित रहती है ।

उपर्युक्त प्रमुख कठिनाइयाँ हैं - जो व्यावहारिक आलोचना के क्षेत्र में उपस्थित होती हैं । इन बातों को सामने रखने पर देखते हैं कि मानव-अभिव्यक्ति के संबंध में चार बातें सामने आती हैं जिन्हें हम अभिव्यक्ति के चार पक्ष कह सकते हैं । ये हैं -

1. अर्थ,

2. भावानुभूति,

3. ध्वनि और

4. उद्देश्य ।

किसी भी आलोचक के लिए इन चारों पक्षों का समुचित ज्ञान अपक्षित है । विभिन्न प्रकार की अभिव्यक्तियों में इन पक्षों की कमी या अधिकता देखी जा सकती है । एक वैज्ञानिक कृति के लिए अर्थ ही सर्वोपरि महत्व का है । उसका भावानुभूति, ध्वनि से कोई विशेष संबंध नहीं । हाँ, उद्देश्य अवश्य उसके अर्थ का पथ-प्रदर्शन करता है । परंतु एक साहित्यकार या वक्ता के लिए भावानुभूति का पक्ष महत्वपूर्ण है, जहाँ पर वह अपने वक्तव्य या भाषण का प्रभाव डालना चाहता है । भाव के विशिष्ट प्रभाव के लिए ध्वनि का अपना स्थान है, विशेष रूप से कविता की स्मरणीय रमणीयता के लिए ध्वनि का सहारा आवश्यक है । इन पक्षों का संबंध काव्य के तत्त्वों से भी जोड़ा जा सकता है । काव्य भी एक विशिष्ट प्रकार की अभिव्यक्ति है, वरन यह कहा जाय कि काव्य एक सजीव और पूर्ण अभिव्यक्ति है तो असमीचीन न होगा । इस अभिव्यक्ति में शब्द, अर्थ, भाव,

कल्पना और बुद्धि-तत्वों का सामंजस्यपूर्ण समन्वय रहता है । काव्य के अतिरिक्त अन्य उक्तियों में समस्त तत्व विद्यमान नहीं रहते । वैज्ञानिक उक्तियों में अर्थ और बुद्धितत्व प्रधान है । दार्शनिक उक्तियों में अर्थ,बुद्धि-तत्वों के साथ कभी-कभी कल्पना -तत्व का भी समावेश हो जाता है । शब्द -तत्व केवल अर्थ-तत्व का वाहक होकर आता है, उसका अपना पूर्ण स्वरस प्रकट नहीं होता और उसकी ध्वनि -संबंधी विशेषता प्रस्फुटित नहीं हो पाती । शास्त्रीय, धार्मिक और नैतिक उक्तियों में भी यही बात देखी जाती है । अतः वह काव्य या उसके समक्ष ही कोई उक्ति है जिसमें उन पांचों तत्वों का समुचित एवं सजीव प्रभावपूर्ण सम्मिश्रण देखा जाता है । इसलिए उक्तियों में सबसे महत्वपूर्ण काव्योक्ति मानी गई है । पूर्वोक्ति चार पक्षों का समाहार भी इन पांचों तत्वों में हो जाता है । काव्य में शब्द तत्व केवल अर्थ का वाहकमात्र नहीं है, वरन् इसका अपना निजी आकर्षण है और सबसे पहले वही हमारे ध्यान को खींचता है । संगीतात्मक ध्वनि, काकु, वक्रोक्ति और भावानुकूल गति या लय का प्रभाव और भाव -संचार करने की क्षमता शब्द तत्व में ही प्रकट हो जाती है । उसका स्वरूप न केवल अर्थ को प्रकट करने में सहायक होता है, वरन वह अन्य तत्वों को भी चमका देता है । काव्य में शब्द, रत्नों के समान दमक लेकर आता है, वह साधारण उपयोग का पत्थर मात्र नहीं रह जाता । उसकी द्युति में मन चमत्कृत होता और उसकी गति में वह झूम जाता है ।

इसी प्रकार अर्थ-तत्व है । काव्य में अर्थ-तत्त्व शब्द के चमत्कार से पूर्ण होने के कारण अलंकृत रूप धारण करता है और अर्थ-व्यंजना का समावेश हो जाता है । वह अर्थ कल्पना और अनुभूति को सजग करता चलता है । व्यंग्यार्थ काव्य में उद्दिष्ट और प्रधान हो जाता है, अतः शब्दों के सामान्य अर्थों से काम नहीं चलता जिसको हम तर्क की कसौटी पर अनर्गल कह सकते हैं । वह काव्य में पूर्ण प्रभाव डालने में समर्थ होता है ।

कल्पना और भाव तत्व तो काव्य में प्रधानतया रहते हैं । काव्य में कल्पना और अनुभूति का माध्यम होने से अर्थ-तत्त्व भी प्रभावित होता है । आलंकारिक अभिव्यक्ति जैसी एक रूपक, उत्प्रेक्षा, अन्योक्ति, प्रतीप, उपमा, अतिशयोक्ति आदि में पायी जाती है, कल्पना -प्रेरित होती है । अतः कल्पना और भावानुभूति को जाग्रत करने वाले काव्य के शब्द -विधान में वाक्य -रचना या शब्द -क्रम का व्याकरणिक महत्व नहीं रहता । आलोचक को अर्थ ग्रहण करने के लिए अपने अनुभव या सहज संस्कारों का सहारा लेना पड़ता है । प्रसंग , परंपरा और प्रयोग के आधार पर हम काव्यगत अभिव्यक्ति के सौन्दर्य का मूल्यांकन कर सकते हैं । शब्द की गति, ध्वनि और लोच से कल्पना के सम्मुख प्रस्तुत दृश्यवाली से और अनुभूति पर पड़े प्रभाव से सामूहिक रूप में जो हमारी बुद्धि ग्रहण करती है, अथवा जो वैचारिक संस्कार बनते हैं वही महत्वपूर्ण होते हैं । गोस्वामी तुलसीदास जी ने काव्य-रचना के व्यापार को स्पष्ट करते हुए लिखा है -

हृदय सिंधु मति सीप समाना । स्वाति सारदा कहैं सुजाना ॥

जो बरसै वर वारि विचारू । होई कवित मुक्तामनि चारू ॥

अनुभूति में डूबी हुई कल्पना या प्रतिभा में जब किसी सुन्दर विचार को प्रवेश वाणी की कृपा से होता है, तब कविता का जन्म होता है । इस प्रकार काव्यगत अर्थ, सामान्य अर्थ से भिन्न है और उसमें ध्वनि, भाव और कल्पना की विशेषताओं का समावेश सहज में ही रहता है । ध्वनि, अर्थ-तत्त्व और छंद के परिणाम स्वरूप संगीत का गुण काव्य में भरती है । भाव, सरसता और रोचकता की सृष्टि करते हुए हमारे मनोविकारों को जाग्रत करते हैं जिससे हमारे भीतर तन्मयता और एकाग्रता आती है और कल्पना सजीव चित्रों को सामने रखती है जो भाव आदि के प्रेरक होता है । इस प्रकार संगीत, चित्रकला और मनोविज्ञान की विशेषताओं से युक्त काव्य एक रमणीय रचना बन जाता है । यह विशेषता अन्य उक्तियों में नहीं पायी जाती । कल्पना -शक्ति के माध्यम से प्रस्तुत किया हुआ अप्रस्तुत विधान केवल अलंकार की सृष्टि नहीं करता, वरन् सूक्ष्म से - सूक्ष्म अनुभूतियों को प्रकट करने में समर्थ होता है । अतएव अलंकार विधान को सदैव नग्नय रूप देना अनुभूति की सूक्ष्मता तीव्रता और सघनता पर तथा कल्पना की शक्ति पर निर्भर करता है । इसी प्रकार काव्य में अर्थाभिव्यक्ति की प्रक्रिया साधारण न होकर जटिल होती है । आलंकारिकता उक्ति-वैचित्र्य या दृश्य-चित्रण के माध्यम से अभिव्यक्त भाव या तात्पर्य को उपर्युक्त कल्पना और अनुभूति -संबंधी क्रियाओं को ध्यान में रखकर ही भली-भाँति से ग्रहण किया जा सकता है ।

काव्य की विशेषता उसकी नव्यता में है । युग की चेतना और अनुभूति को संजोकर कवि जो नूतन अभिव्यक्ति करता है, उसमें उसका अनुभव और जीवन -दर्शन छिपा रहता है, मानव सभ्यता और संस्कृति के विकास की नूतन मंजिलें जिस प्रकार ठीक और प्राचीन स्वरूप जैसी नहीं हो सकती उसी प्रकार उसकी समीक्षा के लिए पूर्ववर्ती या प्राचीन सिद्धांत पूर्णतया उपयुक्त नहीं हैं । इस प्रकार से व्यावहारिक आलोचना शिल्पविधि संबंधी सिद्धांतों के आग्रह से मुक्ति चाहती है । वह काव्य या उक्तियों में प्रकट धर्म, संप्रदाय या दर्शन संबंधी सिद्धांतों के आग्रह से भी मुक्ति चाहती है । क्योंकि जीवन के नवीनतम प्रयोग, नित्य नये सत्य सिद्धांतों और नियमों की खोज करते रहते हैं और प्रगतिशील जीवन को बांधकर रखने में प्राचीन या पूर्ववर्ती सिद्धांत पूर्णतया सक्षम नहीं होते । अत: व्यावहारिक आलोचना एक स्वतंत्र आलोचना- क्रम है ।

2.4 अभ्यास के लिए प्रश्न :

1. आई.ए. रिचर्ड्स के मूल्य -सिद्धांत पर प्रकाश डालिए ।
2. आई.ए. रिचर्ड्स के व्यावहारिक -समीक्षा सिद्धांत पर चर्चा कीजिए ।
3. आई.ए. रिचर्ड्स के संप्रेषण -सिद्धांत की आलोचना कीजिए ।

कुछ उपयोगी पुस्तकें :

1. देवेन्द्र नाथ शर्मा - पाश्चात्य काव्यशास्त्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज , नई दिल्ली ।
2. निर्मला जैन और कुसुम सेठिया - पाश्चात्य साहित्य चिंतन, राधा कृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नईदिल्ली ।
3. शंभुदत्त झा - आई.ए. रिचर्ड्स के काव्य सिद्धांत, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना ।
4. प्रो. भगीरथ मिश्र -पाश्चात्य काव्यशास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

ख) क्रोचे का सिद्धांत और अभिव्यंजनावाद

2.5 बेनेदेतो क्रोचे (Benedetto Crove) 1866-1952) :

क्रोचे का जन्म इटली के नेपल्स नगर में सन् 1866 ई. में हुआ था । ये विश्व के प्रख्यात सौन्दर्यशास्त्री माने गये । इनकी पुस्तक एस्थेटिका (Esthetica) 1901 में प्रकाशित हुई । क्रोचे के कोलम्बिया विश्वविद्यालय ने इस मौलिक ग्रंथ पर स्वर्णपदक दिया । ये इंटोलियन गवर्नमेंट के शिक्षामंत्री रहे । कई विश्वविद्यालयों ने इन्हें व्याख्यान के लिए आमंत्रित किया । इनका देहांत 1952 ई. में हुआ ।

2.6 क्रोचे का सिद्धान्त

क्रोचे एक प्रभावशाली और मौलिक चिंतक थे । उनका कला और काव्यविषयक चिंतन शुद्ध सौन्दर्य -दर्शन है । उन्होंने बड़ी बारीकी के साथ कविता और कला की रचना-प्रक्रिया को स्पष्ट किया है । उनका विचार है कि कविता या कला वास्तव में अभिव्यंजना है । जब अभिव्यंजना पूरी होती है या सफल होती है, तब वह स्वयं ही कला का रूप धारण कर लेती है । अभिव्यंजना को महत्त्व देने के कारण ही उनका सिद्धांत 'अभिव्यंजनावाद' कहलाता है ।

अभिव्यंजना के प्रवर्त्तक क्रोचे न केवल एक कला मीमांसक अपितु एक गंभीर तत्ववेत्ता दार्शनिक भी थे । उन्होंने इतिहास के स्वरूप, सौन्दर्यशास्त्र, मार्क्सवादी अर्थ-व्यवस्था, आत्म -दर्शन आदि अनेक विषयों पर नवीन दृष्टिकोण से विचार किया । सन् 1900 में उन्होंने एक गोष्ठी में एक लेख -"Fundamental thesis of an aesthetica as science of expression and general linguistics" पढ़ा था । यही लेख उनके अभिव्यंजनावादी विचारों का मूलाधार बना । आगे चलकर उन्होंने इस संबंध में कुछ लेख और लिखे तथा एक लेख 'एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका' में भी दिया - इन सबसे उनकी प्रसिद्धि चारों ओर हो गई । उनका कला संबंधी प्रख्यात ग्रंथ थ्योरी आफ एस्थटिक' (सौन्दर्यशास्त्र) के नाम से प्रकाशित हुआ, जो अब विश्व की अनेक भाषाओं में अनूदित हो चुका है । जिसका व्यापक प्रभाव 20वीं शती के पूर्वार्द्ध के दशकों के काव्य और समीक्षा के क्षेत्र पर पड़ा । क्रोचे का ग्रंथ यों तो सौन्दर्य शास्त्र का ग्रंथ है, पर इससे कला और काव्य की देख-परख की एक नयी दृष्टि प्राप्त होती है । इसमें संदेह नहीं कि क्रोचे ने इसका प्रतिपादन

अपने समय के पूर्व सभी काव्यशास्त्रीय और सौन्दर्यशास्त्रीय दर्शनों का अध्ययन करके किया तथा इसमें बड़े-बड़े विचारकों जैसे हीगेल, बौमागाटिन, काण्ट आदि के विचारों का समावेश किया । उन्होंने न तो कला संबंधी केवल वस्तुवादी मान्यताओं को स्वीकार किया है और न शुद्ध रूपवादी मान्यताओं को ही । उनके विचार से वस्तु और रूप कुल -मिलाकर एक हो जाते हैं, तब कला का जन्म होता है इसका उद्‌भव सहज ज्ञान या इन्टयूशन है जिसकी अभिव्यंजना ही कला है । क्रोचे के इस सिद्धांत की व्यापक प्रतिक्रिया हुई । अनेक शंकायें और प्रश्न उठाये गये । तथा अनेक भ्रांत स्थापनायें भी की गयीं । इन सबका उत्तर क्रोचे ने अपने लिखित भाषणों में दिया है जो 'एसेन्स आफ एस्थेटिक' Essence of Aesthetic के रूप में 'डगलस ऐन्सेली के द्वारा अनुवादित कर प्रकाशित किये गये हैं और जो 'टेक्सज के राइस इंस्टीच्यूट आफ होस्टन ' (Rice Institute of Houston of Texas) के उद्‌घाटन -व्याख्यान के लिए सन 1912 में लिखे गये थे । 'एसेन्स आफ एस्थेटिक' में चार व्याख्यान हैं -

1) कला क्या है

2) कला के संबंध में पूर्वाग्रह

3) मानवात्मा और मानव-समाज में कला का स्थान तथा

4) आलोचना और कला का इतिहास ।

क्रोचे का विचार है कि सौन्दर्यपरक ज्ञान तार्किक ज्ञान से भिन्न है । वह विज्ञान , इतिहास, नीतिशास्त्र, दर्शनशास्त्र से भी अलग है । क्योंकि वह तर्क मूलक ज्ञान नहीं है । वह सहज ज्ञान या सहजानुभूति है । उसका संबंध कल्पना और अनुभूति से है । जब कि अन्य ज्ञानों का संबंध बुद्धि से है । सहजानुभूति साकार व्यक्तियों और वस्तुओं के रूप में होती है, सामान्य नियमों और निराकार तर्क प्राप्त निष्कर्षों के रूप में नहीं । कला भौतिक विज्ञान की परिधि से बाहर है । कला सहजानुभूति है । उसका दु:ख-सुख और उपयोगिता से कोई सीधा संबंध नहीं है पर कला सुखात्मक होती है । वह एक विशेष प्रकार के आनन्द को प्रदान करती है । उसका प्रयोजन कलात्मक ही है, अन्य कोई नहीं ।

कला का संबंध किसी वर्ग या जाति से नहीं है । कला के संबंध में एक और प्रश्न उठता है कि वह वस्तु है या रूप ? यद्यपि हम वस्तु और रूप में भेद कर सकते हैं, पर उनमें से प्रत्येक को कलात्मक विशेषण से युक्त नहीं कर सकते ; क्योंकि दोनों की संहिति या समन्विति कलात्मक होती है । अनुभूति ,बिम्ब के बिना अंधी है और बिम्ब अनुभूति के बिना खोखला है । अनुभूति और बिम्ब, समन्विति के बाहर कलात्मक भावना नहीं रखे ।

कला के विभिन्न रूप, भेद, और प्रकार भी महत्व नहीं रखते । वे भी भ्रमात्मक हैं । वास्तविक तथ्य यह है कि कला, अभिव्यंजना है । वह सहजानुभूति है, अत: अभिव्यंजनात्मक या लिरिकल (Lyrical) है । सहज ज्ञान या सहजानुभूति अपने आपमें अभिव्यक्ति है, क्यों कि वह बिम्बात्मक है । बौद्धिक क्रिया की अपेक्षा सहज मानसिक क्रिया में सहजानुभूति (इंटयूशन) उसी मात्रा में प्राप्त होती है । जिस मात्रा में वह अभिव्यक्त होती है । इस प्रकार सहजानुभूति अभिव्यंजना है । न उससे कम और न उससे अधिक, सहजानुभूति कल्पना पर पड़े प्रभाव की अभिव्यक्ति रूप में होती है - वह बिम्बात्मक होती है, अत: वह कला है । निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि कला या अभिव्यंजना सहजानुभूति है । उसके विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि अभिव्यंजनावाद, कलावाद, बिम्बवाद, भाववाद, प्रतीकवाद आदि वादों के मूल में है ।

क्रोचे की एक विलक्षण स्थापना है कि सभी मनुष्य कवि हैं । कुछ बड़े और कुछ छोटे । जिनकी सहजानुभूति या अभिव्यंजना पूर्ण है, वे बड़े कवि और जिनकी अपूर्ण है, वे छोटे कवि । उनके विचार से अभिव्यंजना, कला या काव्य एक सौन्दर्य सृष्टि है । इसकी सृजन प्रक्रिया की चार अवस्थायें हैं । प्रथम अवस्था कल्पना पर पड़े प्रभाव की, द्वितीय मानसिक सौन्दर्यात्मक संश्लेषण की, तृतीय सौन्दर्यानुभूति के आनन्द की तथा चतुर्थ उसकी शारीरिक क्रिया के रूप में रूपान्तरण की यथा ध्वनि, स्वर, गति, रंग, रेखा आदि के रूप में प्रकटीकरण की । ये चारों अवस्थायें, जिनकी सहजानुभूति या अभिव्यंजना के साथ निर्बाध रूप से पूर्ण या सफल होती है । वही बड़ा कवि या कलाकार होता है । अन्य कवि या कलाकारारों में ये सभी अवस्थायें पूर्णता को प्राप्त नहीं होतीं, द्वितीय तक तो सभी आते हैं ।

क्रोचे के मत से केवल प्रभाव नहीं, वरन् प्रभाव की रूप-रचना अभिव्यंजना या कला है । यह रूप सर्जना ही कवि या कलाकार का कार्य है । सामान्य गुण-विवेचन नहीं । क्रोचे के विचार से सहज ज्ञान या अभिव्यंजना, विचार, विज्ञान या बुद्धिजन्य ज्ञान की पहली सीढ़ी है । अभिव्यंजना विचार के बिना हो सकती है, परंतु विचार अभिव्यंजना के बिना नहीं । यही कारण है कि सभ्यता की आदिम अवस्था में कविता मिलती है, गद्य बाद में आता है । क्रोचे का मत है कि कविता मानव-जाति की मातृभाषा है । क्रोचे के विचार से सौन्दर्य सफल अभिव्यंजना है या केवल अभिव्यंजना है । क्योंकि जो सफल नहीं , वह अभिव्यंजना ही नहीं । इस प्रकार कुरूप या भद्दी असफल अभिव्यंजना है । जिनमें अभिव्यंजना असफल है, उनमें भी कहीं-कहीं गुण विद्यमान रहते हैं । क्रोचे का यह भी मत है कि सुन्दर कृतियों की कोटियाँ नहीं होती । असुन्दर की ही कोटियाँ होती हैं । निश्चय ही क्रोचे के ये विचार आदर्शवादी हैं ।

क्रोचे का यह भी विचार है कि प्रकृति उन्हीं के लिए सुन्दर है जो कलाकार या कवि की दृष्टि

से देखते हैं । कल्पना की दृष्टि के बिना प्रकृति का कोई अंग सुन्दर नहीं । कवि प्रकृति के स्वरूप को अपने दृष्टिकोण से सुधार कर प्रस्तुत करता है, तब उसमें सौन्दर्य की सत्ता आती है । बाह्य पदार्थों का केवल यही महत्व है कि वह कल्पना में बिम्ब उत्पन्न करते हैं ।

क्रोचे के विचार से कला का प्रयोजन अभिव्यंजना में ही पूर्ण हो जाता है । उनकी दृष्टि में काव्य और कला एक ही कोटि की वस्तुयें हैं और सौन्दर्य व्यक्ति कल्पना की वस्तु है । अत: यह स्पष्ट है कि कलाकार की अभिव्यंजना अंतर्गत की वस्तु को ही प्रकट करती है, बाह्य जगत को नहीं । बाह्य जगत् की वस्तु पहले कलाकार के अंतर्मानस में आती है और फिर उसकी अभिव्यंजना होती है ।

सौन्दर्य की सृष्टि भी अंतस में ही होती है । अन्य लोग भी उसी को सुन्दर मानते हैं जिसमें उनकी अंतर्भावनायें अभिव्यक्ति पाती हैं । इन सब बातों से यह स्पष्ट है कि अभिव्यंजनावाद मूलत: कला की रचना प्रक्रिया सिद्धांत है ।

क्रोचे का कहना है कि सौन्दर्य तत्व के अन्दर रूप का महत्व है । वह तत्व का महत्व उतना नहीं मानता, कला ज्ञान भी और रूप भी है । वह कहता है : "Since Art is Knowledge and form, It does not belong to the world of feeling and of psychic material , the reason, why so many aesthicians have so often insisted that art is appearance is precisely because they felt the necessity of distinguishing it from the more complex- fact of perception by maintaining its pure intuitivity. For the same reason it has been claimed that art is sentiment . In fact, if the concept of art and historical reality as such be excluded, there remains no other content then reality apprehended in all its ingeniousness and immediateness in the vital effort, in sentiment, that is to say pure intuition". (Theory of Aesthetics.)

उपर्युक्त कथन इस बात का संकेत करता है कि क्रोचे का सहज ज्ञान वास्तव में भावात्मक ज्ञान है और कला भावाभिव्यक्ति है । अनुभूति मात्र नहीं, वरन् अनुभूति का कल्पनागत या स्मृति रूप है । इसकी स्थिति भी अभिव्यंजना की पूर्णता या सफल अभिव्यंजना प्रक्रिया में देखी जा सकती है । भारतीय विचारधारा के अनुसार भाव का भी मानसिक विश्लेषण लगभग वैसा ही है जैसा कि पूर्ण अभिव्यंजना की प्रक्रिया की चारों अवस्थाओं के अन्तर्गत क्रोचे ने स्पष्ट किया है । क्रोचे के मत से ये चार अवस्थाएँ होते हुए भी अभिव्यंजना अखण्ड है और उसे विभिन्न वर्गों में भी विभक्त नहीं किया जा सकता ।

क्रोचे के मत से केवल प्रभाव नहीं, वरन् प्रभाव की रूप-रचना अभिव्यंजना या कला है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का भी इसी प्रकार का मत है कि काव्य सामान्य का वर्णन नहीं करता, वरन् विशेष या व्यक्ति का रूप प्रस्तुत करता है । यह रूप-सर्जना ही कवि या कलाकार का काम है, सामान्य गुण-विवेचन नहीं । क्रोचे सहज-ज्ञान या अभिव्यंजना को विचार या बुद्धिजन्य ज्ञान की प्रथम सीढ़ी मानता है । इस प्रसंग में उसका विचार द्रष्टव्य है ।

क्रोचे के विचार से सौन्दर्य सफल अभिव्यंजना है या केवल अभिव्यंजना है, क्योंकि जो सफल नहीं वह अभिव्यंजना ही नहीं है । इस प्रकार कुरूप की भद्दी असफल अभिव्यंजना है और जिनमें अभिव्यंजना असफल है उन कला -कृतियों में भी कहीं-न-कहीं गुण विद्यमान होते हैं, परंतु जो सफल है उसमें भी दोष है, यह क्रोचे को स्वीकार नहीं । क्रोचे के विचार से गुण परस्पर सम्मिश्रित होते हैं अतः उनका अलग-अलग निदर्शन कठिन होता है । उसके मतानुसार सुन्दर कृतियों की कोटियाँ नहीं होती । असुन्दर की ही कोटियाँ होती हैं । क्रोचे के उपर्युक्त विचार निश्चित अत्यंत आदर्शवादी हैं ।

प्रकृति के संबंध में भी क्रोचे के विचार अपना वैशिष्ट्य रखते हैं । उसका कथन है कि प्रकृति उन्हीं के लिए सुन्दर है जो कलाकार या कवि की दृष्टि से देखते हैं । कल्पना की दृष्टि के बिना प्रकृति का कोई अंग सुन्दर नहीं । जब कवि प्रकृति के स्वरूप को अपने दृष्टिकोण से सुधारकर प्रस्तुत करता है तब उसमें सौन्दर्य की सत्ता आती है । प्रकृति प्रेरणा भी उनको देती है जो इस प्रकार सहजानुभूति और कल्पना द्वारा देखते हैं । क्रोचे बाह्य प्रदार्थों को कल्पना में बिम्ब उत्पन्न करने वाली वस्तुओं के रूप में स्वीकार करता है ।

कला या अभिव्यंजना एक मानसिक क्रिया है, एक आध्यात्मिक आवश्यकता है, इसीलिए क्रोचे इसे सहजानुभूति या सहजज्ञान के रूप में स्वीकार करता है । क्रोचे कला को मानव को एक सहज-मानसिक क्रिया के रूप में स्वीकार करके उसको अखण्डता और शाश्वत सत्ता को प्रमाणित किया है । फिर भी कला जिस रूप में एक पूर्ण या शाश्वत वस्तु है वह दुर्लभ वस्तु है ।

क्रोचे काव्य या कला का प्रयोजन अभिव्यंजन मात्र से ही पूर्ण मानता है । उसकी दृष्टि में काव्य और कला एक ही कोटि की वस्तुएँ हैं । उसके विचार से सौन्दर्य व्यक्ति-कल्पना की वस्तु है । इन विचारों से स्पष्ट है कि अभिव्यंजनावादी मत के अनुसार कवि या कलाकार अपने अन्तर्जगत की वस्तु को ही प्रकाशित करता है, बाह्य वस्तु को नहीं । उसके समक्ष यथार्थ का महत्त्व अन्तर्भावना को प्रभावित करने में ही है ।

यह अभिव्यंजनावाद का संक्षिप्त विश्लेषण है जिसकी विशेषता वैयक्तिकता में निहित है । इसमें अनेक ऐसी बातें हैं जो सर्वमान्य नहीं हो सकती और जिन पर आपत्ति उठायी गयी है । फिर भी

इस अभिव्यंजनावाद का अपना महत्त्व है और इसके आधार पर कलावाद और काव्य में व्यक्तिवाद के विकास को बड़ा बल किला ।

इधर क्रोचे कहता है सौन्दर्य की सृष्टि अंतस में होती है । दूसरे लोग भी उसे सुन्दर मानते हैं । जिसमें उनकी भावनाएँ अभिव्यंजित की गई हों । इसलिए कलाकृति के लिए प्रत्येक वस्तु उपयुक्त है, अच्छा -बुरे होने का प्रश्न नहीं ।

क्रोचे के अनुसार सामान्य अनुभूति और कलाजन्य अनुभूति में गहरा अंतर है । जैसे नाटक के नायक की विभिन्न परिस्थितियों को देखकर हम हँसते हैं, आँसू बहाते हैं, और आनन्द अनुभव करते हैं किन्तु हमारा यह हँसना, आँसू बहाना या आनन्द सामान्य सुख-दु:ख से हल्का होता है । सामान्य जीवन के सुख-दु:ख वास्तविक एवं गंभीर होते हैं । जबकि कलाजन्य सुख-दु:ख अवास्तविक काल्पनिक एवं ऊपरी होते हैं । अस्तु , क्रोचे इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि कलाजन्य अनुभूति सामान्य अनुभूति से भिन्न है ।

2.7 क्रोचे की धारणाएँ संक्षेप में इस प्रकार हैं :

1. सहजानुभूति , अभिव्यंजना और कला तीनों पर्यायवाची हैं ।
2. कला में विषय और शैली की अभिन्नता रहती है ।
3. कला का तात्विक या आंगिक विश्लेषण करना कला की हत्या करना है ।
4. कला सृजन की प्रक्रिया और कला आस्वादन की प्रक्रिया मूलत: एक ही है ।
5. सामान्य अनुभूति और कलाजन्य अनुभूति में मात्रा का अंतर है ।

क्रोचे के विचार व प्रभाव के कारण यह तय हो जाता है कि कला और साहित्य को दार्शनिकता, बौद्धिकता, नैतिकता एवं उपयोगिता के नियंत्रण से मुक्ति मिली तथा साथ ही शैली के बाह्य एवं आरोपित चामत्कारिक तत्त्वों की अपेक्षा अनुभूति की सहज अभिव्यक्ति को बल मिला । अत: कला का लक्ष्य केवल कला या सौन्दर्य माननेवालों की दृष्टि से क्रोचे का महत्व अत्यधिक है । ऐसा नि:संकोच कहा जा सकता है । क्योंकि क्रोचे का अभिव्यंजना सिद्धांत चेतना को सबसे पहली और सबसे महत्वपूर्ण क्रिया सहजानुभूति है, जो अभिव्यंजना पर आधारित है । जिसमें रचनाकार की सहजानुभूति ही अभिव्यंजना है और अभिव्यंजना ही रचना (साहित्य, संगीत, चित्र, मूर्ति, आदि) है । यह सहाजानुभूति संवेदना के माध्यम से होती है । जिसकी संकल्पना का विस्तृत विवरण ऊपर प्रस्तुत किया गया ।

2.8 अभ्यास के लिए प्रश्न :

1. क्रोचे के अभिव्यंजनावाद की मूल स्थापनाओं पर प्रकाश डालिए ।
2. क्रोचे के अभिव्यंजना सिद्धांत पर एक नोट तैयार कीजिए ।
3. क्रोचे का परिचय दीजिए ।
4. 'सामान्य अनुभूति और कलाजन्य अनुभूति' में कया अंतर है ?
5. कया कला का तात्विक विश्लेषण संभव है ?

कुछ उपयोगी पुस्तकें :

1. डॉ. लक्ष्मी नारायण सुधांशु, काव्य में अभिव्यंजनावाद, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना ।
2. डॉ. रामअवध द्विवेदी, साहित्य सिद्धांत, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद , पटना ।
3 डॉ. भगीरथ मिश्र, पाश्चात्य काव्यशास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी ।
4. डॉ. राचन्द्र तिवारी , भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र,लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद ।
5. डॉ. नगेन्द्र तथा राकुमार कोहली, पाश्चात्य काव्यशास्त्र सिद्धांत और वाद, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय ।

UNIT- III

स्वच्छन्दतावाद,मार्क्सवाद,मनोविश्लेषणवाद,अस्तित्त्ववाद

3.1 स्वच्छन्दतावाद

3.1.1 रुसो तथा उनकी विचारधारा

3.1.2 प्रमुख तत्व एवं विशेषताएँ

3.1.3 निष्कर्ष

3.2 **मार्क्सवाद**

3.2.1 कार्लमा**र्क्स**

3.2.2 मार्क्सवादी सिद्धांत

3.2.3 कलावाद

3.3 मनोविश्लेषणवाद

3.3.1 **फ्रायड**

3.3.2 फ्रायड की मनोवैज्ञानिक पद्धति

3.3.3 निष्कर्ष

3.4 अस्तित्त्ववाद

3.4.1 ज्यॉपाल सार्त्र

3.4.2 अस्तित्ववादी विचारधारा

3.4.3 निष्कर्ष

3.5 अभ्यास प्रश्न

Unit - III

स्वच्छन्दता वाद

(Romanticism) :

3.1 स्वच्छन्दतावाद (Romanticism) :

हिन्दी का स्वच्छन्दतावाद शब्द , अंग्रेजी के रोमैंटिसिज्म (Romanticism) का हिन्दी अनुवाद है । प्रेम के स्वच्छन्द क्रिया-कलाप ही रोमैंटिसिज्म है । प्रेम और स्वच्छन्दता दोनों ही मानव जीवन के सहज तत्त्व हैं । पाश्चात्य आलोचनाशास्त्र में स्वच्छन्दतावाद को शास्त्रवाद (क्लासिजिम) के विपर्यय के रूप में स्वीकार किया गया । विचारपूर्वक देखा जाय तो पाश्चात्य जगत में अठारहवीं शताब्दी के अंतिम दशक और उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में एक नवीन साहित्यिक धारा का उन्मेष हुआ, जिसे स्वच्छन्दतावाद (Romanticism) कहा गया । इस युग में रोमैंटिसिज्म को ऐसी व्याप्ति एवं विस्तृति प्राप्त हुई कि यह शब्द कला एवं साहित्य के क्षेत्र में न केवल एक जीवंत और प्राणवान चिंतनधारा के रूप में प्रकट हुआ बल्कि इसने संपूर्ण यूरोपीय कला एवं साहित्य के क्षेत्र में आमूल परिवर्तन उपस्थित कर नवीन प्रतिमानों की स्थापना की ।

3.1.1 रूसो तथा उनकी विचारधारा

सामान्यत: स्वच्छन्दतावाद नव्यशास्त्रवाद की प्रतिक्रिया में ही उत्पन्न हुआ और सामाजिक परिवर्तन की दिशा में देखा गया है, समाज जब प्राचीन आदर्शों को ग्रहण करना अस्वीकार कर देता है तथा वस्तु -स्थितियाँ भी उन आदर्शों को जीवित रखने के लिए उपयुक्त वातावरण का प्रावधान नहीं कर पाती, तब स्वभावत: ही साहित्यकार की चेतना भी उन प्राचीन जीवन मूल्यों को स्वीकार करने में अपने आपको अक्षम समझने लगती है । इस प्रकार नव्यशास्त्रवादियों ने जब नियमों के जाल में कवियों की उन्मुक्त काव्य चेतना को जकड़ना चाहा तथा काव्य में नैसर्गिक भावोन्मेष की न्यूनता-सी होने लगी तब कवियों का मन नियमों के जाल को टूक-टूक करने के लिए उन्मुक्त हो गया । फलस्वरूप प्राचीन धर्म, राज्य-व्यवस्था और परंपरागत सामाजिक संस्कारों में बदलाव आया और एक नवीन जीवन दृष्ट का उदय हुआ, साहित्य के क्षेत्र में भी प्राचीनता का निर्मोक उतार कर नवीन भाव पुष्पों से उसका शृंगार किया गया । इस धारा को1789 ई. में फ्रांस में होने वाली राज्य -क्रांति

(French Revolution) से गहरा संबंध रहा जिस क्रांति ने यूरोप की प्राचीन संस्कृति को पूर्णत: बदल डाला, जीवन -मूल्यों में क्रांतिकारी परिवर्तन कर दिया, जीवन -दृष्टि में युगांतर स्थापित कर दिया और जिन सबका परिणाम साहित्यक मानदंडों पर भी पड़ा । फ्रांस की राज्य-क्रांति के जनक रूसो इस रोमैंटिक विचारधारा का प्रतिनिधि था, जिन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'एमिल' में मानव स्ततंत्रता पर बल देते हुए स्पष्ट रूप से कहा -"Man is born Free but is found everywhere in chains"

उन्होंने प्रकृति की ओर वापिस लौटो(Back to Nature) का नारा लगाया । स्वातंत्र्य की लालसा, बंधनों को काट फेंकने के उत्साह और प्रकृति के प्रति अदम्य प्रेम ने साहित्य को भी प्रभावित किया । अब जीवन के प्राचीन मूल्यों का स्थान नवीन मूल्यों ने ले लिया तथा नवीन समाज रचना का शिलान्यास हुआ । साथ ही बुद्धिजीवियों में भी एक नवीन लोक-चेतना का उन्मेष हुआ और दर्शन एवं नीति के क्षेत्र में अनेक लोकमंगलकारी विचारधाराओं का अभ्युदय हुआ । अतएव इन समस्त क्रांतिकारी परिवर्तन एवं नवीन जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा की जिन नवीन रूपों में साहित्य जगत में अभिव्यक्ति प्राप्त हुई, उसे साहित्य एवं कला के इतिहास में स्वच्छन्दतावाद के नाम से अभिहित किया गया ।

पाचात्य साहित्य जगत में स्वच्छन्दतावादी आंदोलन की पुष्टि जर्मनी के दार्शनिक एवं साहित्यकारों द्वारा भी हुई । और जर्मनी में विकलमैन(सन् 1717-68) के प्राचीन यूनान की मूर्तिकला एवं चित्रकला का पुनर्मूल्यांकन करते समय पहली बार कला की एक अंतरंग सत्ता का अस्तित्व स्वीकार किया । उन्होंने कला को आत्म-स्वरूप मानकर कहा कि अभिव्यक्त रूप में कोई भी कला कलाकार के बाह्यांतर का प्रतिबिम्ब ही होती है । इस प्रकार विकलमैन की विचारधारा से स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति को बल प्राप्त हुआ । लेकिन अभिव्यंजना के क्षेत्र में प्राचीन नियमों एवं सिद्धांतों का आश्रय लेने के कारण कुछ पाश्चात्य विद्वान उन्हें पूर्णतया स्वच्छन्दतावादी आलोचक न मानकर शास्त्रीय पद्धति एवं स्वच्छन्दतावादी धारा के मध्य का आलोचक मानते हैं । जर्मनी के अन्य विचारकों में लेसिंग का नाम विशेष उल्लेखनीय है । लेसिंग ने अपनी 'लाओकून' नामक आलोचनात्मक कृति में कला एवं साहित्य के संबंध में विस्तृत चर्चा की है और उन्होंने पहली बार नण्यशास्त्रवादियों को चुनौती देते हुए उसका सार्वजनिक रूप से विरोध किया और कवियों को कृत्रिमता से स्वाभाविकता की ओर संचरण करने की प्रेणा दी । इस प्रकार जर्मनी में लेसिंग के समय तक स्वच्छन्दतावाद नण्यशास्त्रवाद के समकक्ष विकसिक हो गया था और लेसिंग के पश्चात एक ओर तो शिलर स श्लेगल आदि सार्सहिषत्यकारों द्वारा और दूसरी ओर हीगेल एवं कांट जैसे दार्शनिक द्वारा स्वच्छन्दतावादी सिद्धांतों का व्यस्थित अध्ययन प्रस्तुत हुआ । इसके बावजूद

स्वच्छन्दतावादी विचारकों के समकालीन प्रसिद्ध कवि गेटे ने कई प्रसंगों में शिलर के वक्तव्यों को जी भर के कोसा और शास्त्रीयवादी विचारधारा का समर्थन किया । इस प्रकार स्वच्छन्दतावाद के विकास में फ्रांस जर्मनी के विचारकों और कृतिकारों की महत्त्वपूर्ण भूमिका के बावजूद उसके प्रवर्तन का श्रेय इन देशों को प्राप्त नहीं हो सका ।

सामान्यतया प्रसिद्ध आंग्ल कवि एवं आलोचक विलियम वर्ड्सवर्थ को ही स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा का प्रवर्तक माना जाता है और स्वच्छन्दतावाद के उत्थान का श्रेय इंग्लैंड को ही प्राप्त हुआ । कहा जाता है कि वर्ड्सवर्थ एवं कोलरिज की युगांतकारी काव्य कृति लिरिकल बैलेड्स का दूसरा संस्करण जब सन् 1800 में प्रकाशित हुआ तब इसमें वर्ड्सवर्थ की भूमिका (प्रिफेस) में साहित्यालोचन संबंधी सिद्धांतों की स्थापना की गयी और यही 'प्रिफेस' स्वच्छन्दतावाद का पहला महान घोषणापत्र माना गया । स्वयं वर्ड्सवर्थ की कविता में स्वच्छन्दतावाद की प्राय: सभी विशेषताएँ निखरे हुए रूप में दीख पड़ती हैं और वर्ड्सवर्थ के मित्र तथा सहयोगी कवि कॉलरिज ने भी अठारहवीं शताब्दी की काव्यरूढ़ मान्यताओं का उन्मूलन कर स्वच्छन्दतावाद की प्रतिष्ठा में योगदान दिया । इस संबंध में कॉलरिज की 'बायोग्राफिया लिटेरेरिया' विशेष रूप से उल्लेखनीय है और वर्ड्सवर्थ एवं कॉलरिज के सदृश बायरन, शैली, कीटस, लेहंट एवं राबर्ट ब्लेक आदि साहित्यकारों ने स्वच्छन्दतावाद के अभ्युदय में अपना महत्त्वपूर्ण योग दिया है ।

रूसो के स्वच्छन्दतावादी विचारों का प्रभाव किसी पर भावुकता के रूप में, किसी पर आत्मिक बल और प्रेरणा के रूप में तथा किसी पर पूर्णतया क्रांति की भावना के रूप में पड़ा । परिणामस्वरूप यह स्वच्छन्दतावादी पुनरुत्थान केवल हल्का, हवाई, और मनोरंजनपूर्ण काव्य देने के स्थान पर ऐसा साहित्य दे गया जिसमें आत्ममंथन प्रेमबल, सौन्दर्य की उत्कृष्ट अनुभूति, मानवता की अक्षय संवेदना, उत्सुकता, उल्लास और लोकमानस का मर्म स्पर्श करने की विशेषताएँ समाविष्ट हो गयीं । इसलिए पाश्चात्य साहित्य के इतिहास में स्वच्छन्दतावादी आंदोलन का बड़ा महत्त्व है । क्योंकि इसके प्रभावस्वरूप अनेक मतवादों और कला तथा काव्य की प्रयोग -धाराओं का प्रस्फुटन हुआ ।

स्वच्छन्दतावाद वास्तव में एक नव्य कल्पनाशील दृष्टिकोण से जीवन और प्रकृति को देखने की प्रवृत्ति है जिसने प्राय: सभी कला-रूपों को प्रभावित किया है तथा इतिहास और दर्शन पर प्रभाव डाला । साहित्य और कला के क्षेत्र में यह पैनी सूक्ष्म संवेदनाओं एवं उत्कृष्ट काल्पनिक अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने की कला है । स्वच्छन्दतावादी भावना के मुख्य तत्व हैं - सौन्दर्य-प्रेम, सौन्दर्य के प्रति जिज्ञासा, प्रकृति को चेतन मानकर उसके साथ संबंध जोड़ना, सरल और प्राकृतिक जीवन का मोह तथा कृत्रिमता और आडंबर का विरोध, परंपरा से मुक्ति, काल्पनिकता, भावुकता, वैयक्तिकता

तथा मानववादी दृष्टि कोण ।

3.1.2 प्रमुख तत्त्व एवं विशेषताएँ :

स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा का अनुशीलन करने के प्रश्चात विचारक उसकी निम्नलिखित प्रमुख विशेषताओं पर हमारा ध्यान आकर्षित करते है -

1. विद्रोह की प्रवृत्ति :

अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद का संबंध फ्रासीसी राज्य -क्रांति (French -Revolution)से था , अत: उसमें स्वतंत्रता एवं विद्रोह का भाव होना स्वाभाविक था । उसमें हमें न केवल राजनैतिक शक्तियों के अत्याचार और अन्याय के विरुद्ध ही अपितु नीति, धर्म, साहित्यक परंपराओं और शास्त्रयनियमों के विरुद्ध भी विद्रोह मिलता है । सत्य तो यह है कि स्वच्छन्दतावादियों ने न केवल काव्य में रचना -शिल्प में ही विद्रोह किया बल्कि विषय -जगत में भी नवीन मार्ग का अनुसरण किया । इस काव्य ने नए-नए साहित्यक प्रयोग किए और उसमें सफलता भी पाई, छंदों के विविध स्वरूपों का उद्‌घाटन किया । उनका काव्य एक नई चिंताधारा तथा नए भावोन्मेष से अनुप्राणित है । उन्होंने आभिजात्य के स्थान पर सामान्य को अपना वर्ण्य-विषय बनाया और उन्होंने उदात्त वस्तुओं के स्थान में खंडहर, सूखी पत्ती, श्मशान एवं स्काईलार्क (एक चिड़िया) आदि साधारण से साधारण वस्तुओं का भी काव्यात्मक चित्रण किया । इन्होंने बुद्धिवाद का भी विरोध किया और साधारण मानव के प्रति पूरी सहानुभूति रखकर अभिजात्य अथवा कुलीन के स्थान पर सामान्य एवं साधारण स्तर के पात्रों का चित्रण किया है । वर्ड्सवर्ड ने उसके बारे में लिखा है 'That False Secondnry power by which we multiply distinctions"

2. कृत्रिमता से मुक्ति :

प्रकृति की ओर लौटने तथा सरलता के प्रति आग्रह ने कवियों को कृत्रिमता तथा आडंबर से मुक्त होने की प्रेरणा दी । इन्हीं भावों से अनुप्रेरित हो 'Lyrical Ballads" नामक काव्य संग्रह लिखा गया, जिसमें सामान्य व्यक्तियों के सहज और सरल भावों को चित्रित किया गया था । वस्तुत: रोमांटिक कवियों का उद्देश्य ही कृत्रिम, अयथार्थ, लेखन, -शैली से मुक्त होता था ; उन्होंने शैलीगत सरलता को अपनाया । 1798 ई. में प्रकाशित Lyrical Ballads" की भूमिका में -जिसे स्वच्छन्दतावाद का सिद्धांत -पत्र (Manifesto) कहा गया है । वर्ड्सवर्थ ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि ये कविताएँ इसी बात का पता लगाने के लिए लिखी गई हैं कि मध्य एवं निम्न वर्ग के लोगों की

बोलचाल की भाषा काव्यानन्द के लिए उपयोगी हो सकती है ..... ये लोग सामाजिक मिथ्या अहंकार से मुक्त होने के कारण अपने भावों एवं विचारों को अकृत्रिम शब्दों में व्यक्त करते हैं -

"They (poens) were written chiefly to asertain how far the language of conversation in the middle and lower classes of socicty is adapted to the purposes of poetic pleasure .... being less under the influence of soial vanety, they convey their feclings and notions in simple and unelaborated expressions'.

स्वच्छन्दतावादी कवियों की मान्यता है भाषा और अभिव्यंजना -शैली में कृत्रिमता और अस्वाभाविकता से मुक्त होकर लिखना चाहिए । भाषा और अभिव्यक्ति के बनावटीपन से दूर रहकर सहजभाव -तरंगों को स्वाभाविक और हृदयस्पर्शी अभिव्यक्ति देना स्वच्छन्दतावादी कवि का प्रमुख उद्दोय बन गया था । यही कारण था कि उसमें एक सहज आकर्षण और अकृत्रिम मनोरमता दिखाई देती है । सरल और प्राकृतिक जीवन के प्रति स्वच्छन्दतवादी कवियों को प्रबल आकर्षण था ।

3. सौन्दर्य-प्रेम :

सौन्दर्यमयी दृष्टि और ऐन्द्रियता (Spirit of beauty and sensousness) अर्थात् स्वच्छन्दतवाद में सौन्दर्यप्रेम और सौन्दर्य के प्रति जिज्ञासा का भाव प्रमुख तत्व के रूप में उभरे हैं । इनके काव्य में सौन्दर्यभावना सर्वत्र मिलती है । शैली संपूर्ण प्रकृति को सौन्दर्यमयी पाते हैं । कीट्स के काव्य का एकमात्र संदेश ही यह है कि सौन्दर्य शाश्वत और चिरंतन है और वही सर्वोच्च सत्य है -

" Beaut is truth, truth beauty,
that is all we know on earth,
and all we need to know" .

कीट्स के काव्य में ऐन्द्रिकता का तत्त्व प्रधान है । उनके लिए जीवन संवेगों की शृंखला (Serise of sensations) है । अत: उनके काव्य की प्रत्येक पंक्ति में स्पर्श, गंध दृष्टिजन्य आनन्द का उल्लेख विशेष रूप से मिलता है । वह संवेदनाओं से पूर्ण है । इस प्रकार कीट्स यदि एक ओर यह कहते हैं -"O for a life of sensations $r_a$ther of thoughts"

तो दूसरी ओर उनका यह भी कहना है -"It is more noble to sit like Jove than to fly like Mercury."

यूं तो सौन्दर्य-प्रेम स्वच्छन्दतावाद का भाव पक्ष है जो कला और काव्य का प्रकृत तत्व है । सौर्न्य-प्रेम में जब तक गहरी जिज्ञासा की भावना सम्मिलित हो जाती है, तब वह स्वच्छन्द प्रेम - चर्या, स्वच्छन्दतावाद का रूप धारण कर लेती है । अत: सौन्दर्य में रम जाना और उसके भीतर और गहरे छिपे सौन्दर्य को देखने और जानने की इच्छा, सौन्दर्य के प्रति रोमांटिक या स्वच्छन्दतावादी दृष्टि की विशिष्टता है । यह जिज्ञासा उसका बौद्धिक पक्ष है ।

4. काल्पनिकता :

स्वच्छन्दतावादी कवियों में कल्पना का प्राधान्य मिलता है तथा उन्होंने कल्पानालोक में उन्मुक्त विचरण भी किया । साथ ही उनकी सुन्दर बिम्बात्मक एवं काल्पनिक तत्परता ने प्रकृति को विविध रूपों में अनुभूतियों की ओर उन्हें रहस्यवादी भी बना दिया तथा वह प्रकृति के कण-कण में देवी सत्ता का आभास मानकर प्रत्येक वस्तु को आध्यात्मिक संबंध में बांधकर देखने लगा ।

स्वच्छन्दतावाद में अभिव्यंजित जो अनुभूति होती है, वह काल्पनिकता के माध्यम से ही होती है । यही उस अनुभूति की अभिव्यंजना में एक विशिष्ट लालित्य और कला भर देती है । कल्पनाजन्य अनुभूति के कारण अभिव्यक्ति प्राचीन से भिन्न, अद्भुत और मनोरम बन जाती है । जिस प्रकार हिंदी के छायावादी कवियों ने स्थूल के लिए सूक्ष्म उपमानों का प्रयोग किया, उसी प्रकार रोमांटिक कवियों के काव्य में स्थूल की तुलना के लिए सूक्ष्म उपमान प्रयुक्त हुए हैं । शैली पश्चिमी हवा(West wind) का प्रभाव बताते हुए लिखता है कि सूखी पत्तियाँ प्रेतों की तरह भागती हैं -

"......the Leaves dead ,

Are driven like ghosts froman enchanter fleeing."

इसी प्रकार वह स्काइलार्क (एक चिड़िया) की तुलना विचारों में छिपे कवि से करता है -

Like a poet hidden

In the light of thought,

कल्पना की अतिशयता के कारण कहीं-कहीं इनका काव्य अमूर्त, सूक्ष्म और विरल हो उठा है, जिसके कारण आर्नल्ड ने शैली के बारे में लिखा है -

" He is an ineffectual angel beating its luminous wings in void in vain."

अर्थात् वह एक दूत है जो अपने चमकीले पंखों को शून्य में व्यर्थ ही फड़फड़ाता है

5. भावुकता :

स्वच्छन्दतावाद, वस्तुपरक यथार्थवाद न होकर एक प्रकार का आदर्शवाद है । वस्तु या व्यक्ति को देखने की उसकी दृष्टि भावुकता की होती है, सामान्य नहीं । स्वच्छन्दतावाद प्रकृति, दृश्य या वस्तु को किसी भाव से युक्त होकर देखता है ; पर उसकी भावुकता अनर्गल या असंगत नहीं होती । उसे देखकर कवि के भीतर एक विशेष प्रेरणा उत्पन्न हो जाती है और उसी से आविष्ट होकर वह उसका वर्णन करता है । यह वर्णन ऐसा होता है कि उसे पढ़ने या सुननेवाला भी उसी भाव में बह जाता है । कभी-कभी ऐसा भी लगता है कि उसका वर्णन वास्तविकता से दूर है ; परंतु ऐसा तभी होता है ; अन्यथा उसके वर्णन की कला के जादू से प्रभावित होकर हम भी उसमें भर जाते हैं । इस भावुकता के परिणामस्वरूप स्वच्छन्दतावादी कवि का वर्णन वैयक्तिकता से पूर्ण होता है ।

6. वैयक्तिकता :

स्वच्छन्दतावाद की प्रमुख प्रवृत्ति है वैयक्तिकता -बोध । इसमें कवि अपनी दृष्टि, अपनी भावना और अपनी रुचि को प्रधानता देता है । इसकारण जहाँ वह एक ओर सामाजिक मर्यादा और परंपरागत संधनों से मुक्ति के गीत गाता है तथा उनके बंधनों और रुढ़ियों को तोड़कर क्रांति भी लाना चाहता है ; वहीं अपने व्यक्तिगत जीवन में प्रेम और अर्थ-काम की असफलता के कारण निराशा की तथा विषाद और वेदना की भी अभिव्यक्ति करता है ।

प्रबंधकाव्य में यदि नायक आत्मकेन्द्रित व्यक्ति होता है तो गीति-काव्य में कवि अपनी उदासी निराशा, वेदना, व्यथा आदि का चित्रण करता है । काव्य में विवेक के स्थान पर संवेग, भावुकता, आकांक्षा, आदर्शमयता होती है । वह अरूप की भावना में रमता है और स्थूल से अधिक सूक्ष्म को महत्व देता है । उसमें गहन अनुभूति होती है और उसकी यह तीव्र अनुभूति ही उसे काव्य -सृजन की प्रेरणा देती है । इसी व्यक्तिवाद के प्राधान्य के कारण कवि अपने ही भावोन्माद में लिप्त रहता है जिसकी अतिशयता से क्षुब्ध हो जर्मन कवि गोयठे(गेटे) ने स्वच्छन्दतावादी काव्य को रुग्णता का काव्य तक कह दिया हैं -

"Romantiicisom was diseased"

7. प्रकृति -प्रेम :

प्रकृति के प्रति प्रबल आकर्षण स्वच्छन्दतवादी की एक प्रमुख विशिष्टता है । प्रकृति भी

संवेदना की अनुभूति स्वच्छन्दतवादी काव्य में बराबर देखी जाती हैं । उल्लास और विषाद की स्पष्ट छाया देखना और उससे स्वयं प्रभावित होना स्वच्छन्दतावाद की व्यापक संवेनशीलता का परिचायक है । सूर्य का उगना-डूबना, बादलों का घिरना, पर्वतों पर झोंकों से मस्त होकर द्रुमों का थिरकना वर्षा, शरद, बसंत और ग्रीष्म ऋतुओं में उभरती हुई प्रकृति की नवीन छटायें, स्वच्छन्दतावादी कवि को उल्लास से भर देती थीं । प्रकृति की शोभा और उसकी बदलती छवियाँ, स्वच्छन्दतावाद की सतरंगी आभा है जिसमें कवि विभोर हो उठता है । घाटियों और चारागाहों में खिलते -डोलते फूल स्वच्छन्दतावादी कवि को मुग्ध कर देते हैं । इन प्राकृतिक दृश्यों से उसकी संवेदना व्यापक और कोमल बन जाती है । प्रकृति के प्रति तीव्र अनुराग के कारण प्रकृति की गोद में कवियों ने शरण ली, जहाँ यंत्रयुग का धुआँ न पहुँचा हो । प्रकृति मुक्त प्रांगण में स्वच्छन्द विहार करते हुए प्रकृति को विभिन्न रूपों में अंकित किया है । वड्सवर्थ के शब्दों में -

> The sounding Oataract (महाजल प्रपात)
>
> Haunted me like a passion ....

प्रकृति में मानव भावनाओं के आरोप ने स्वच्छन्दतावाद में मानववादी भावनाओं को जाग्रत कर गहराई से उभारा । इस प्रकार मानवतावादी दृष्टि भी इसकी एक विशेषता बन गयी - सौन्दर्य और भावनाओं की खोज उसके लिए उल्लासपूर्ण ध्येय बन गया ।

8. मानवतावादी दृष्टि :

रुसो के विचारों में मानव के गौरव और गरिमा की जोरदार शब्दों में प्रतिष्ठा की । मनुष्य को मनुष्य के रूप में मान्यता मिलनी चाहिए । उसने प्रेम की अंतर्व्यापी शक्ति को भी उभारा । नागरीय भीड़भाड़ और दिखावे के व्यवहार के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया भी रूसो ने व्यक्त की । इसका प्रभाव स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा पर गहरा पड़ा । व्यापक रूप से पीड़ित और दुःखी के प्रति संवेदना का भाव इस प्रकार के काव्य में देखने को मिलता है । संवेदना के विस्तार से व्यापक प्रेमभाव जाग्रत हुआ जिसके परिणामस्वरूप मानवता वादी दृष्टिकोण का विकास हुआ ।

पूर्व व पश्चिम के दर्शन के प्रारंभ से ही कहा जाता है कि मानव जीवन का मुख्य उद्देश्य है - मानव सुख और कल्याण के लिए वह काम करे । पृथ्वी पर और प्रकृति की सीमा में वह मानव मंगल हेतु काम करे । यह पथ्वी एवं यह प्रकृति ही हमारा घर है । यही 'मानवतावाद' की मूल परिभाषा कही गई है ।

इधर प्लेटो और अरिस्टोटल के युग से आग स्थिति बहुत बदल गई है । ढेर सारा ज्ञान और

अनुभव हमें मिल चुका । कंफ्यूसस और बुद्ध के बाद 25 सदी के दौरान मानव बहुत आगे जा चुका है । धीरे-धीरे ज्ञान का भंडार बढ़ा है ।

मानववादी दृष्टि विश्व के प्रति स्पष्ट दृष्टि प्रस्तुत करती है । आज इक्कीसवीं सदी में "Philosophy of Joyous serviec for the greater good of all humamity in this natural world and advocating the mathods of reason, science and democracy."

मानववाद बहु आयामी धारणा है । आज के युग में इसके कुछ प्रमुख तत्व इस प्रकार हैं :

.1. मानवतावाद में प्रकृत भौतिक रूप पर विश्वास है । विश्व में कोई परावास्तववाद नहीं । प्रकृति निरंतर परिवर्तनशीलता का कारक है ।

.2. मानवतावाद का विज्ञान के नियमों पर विश्वास है हम मनुष्य प्रकृति से ही विकसित हैं । दिमाग एवं मस्तिष्क शरीर के अभिन्न अंग हैं । मृत्यु के बाद कोई चेतना नहीं रह जाती ।

.3. मानवतावाद में मानव सर्वोपरि है, और उसमें अपनी समस्याओं के समाधान की तर्क एवं वैज्ञानिक ढंग से हल करने की क्षमता है ।

4. मानवतावाद वैश्विक पूर्व- निर्धारणता, भाग्यवाद आदि का विरोधी है । मनुष्य अपने कार्य के लिए स्वतंत्र है, अपना भाग्यनियंता, कुछ सीमाओं में, स्वय है ।

5. मानवतावाद भौतिक अनुभव में और भौतिक संबंधों में विश्वासी है । सांसारिक आनन्द, मुक्ति एवं प्रगति -आर्थिक, सांस्कृतिक एवं नैतिक -में हर मानव, किसी देश, जाति, धर्म का हो, मुक्त है ।

6. मानवतावाद में व्यक्तिगत संतोष और निरंतर स्वविकास, विभिन्न कार्य एवं गतिविधियों से व्यक्ति अच्छा जीवन पा सकता है ।

7. मानवतावाद कला एवं सौन्दर्य के वृहत्तर संभव विकास में विश्वासी है । इसमें लोगों के जीवन में यथार्थ आध्यात्मिक अनुभव संभव हैं ।

8. मानवतावाद दूरगामी सामाजिक कार्यक्रम में विश्वासी है । विश्व में गणतंत्र, शांति एवं उच्चमान के जीवन मूल्यों में विश्वासी है ।

9. मानवतावाद तर्क एवं वैज्ञानिक पद्धति के पूर्ण सामाजिक क्रियान्वय का विश्वासी है । इसमें अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, जन स्वतंत्रता, आथिक, सामाजिक सांस्कृतिक स्वतंत्रता में है ।

10. मानवतावाद वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार है । बराबर मूल अवधारणाओं पर प्रश्न उठाता है । नया सिद्धांत नहीं । प्रयोगशीलता पर भी टिका है ।

9. काव्य -शिल्प में क्रांति :

स्वच्छन्दतावादी कवियों ने जहाँ काव्य वस्तु में परिवर्तन का आवाहन किया,, वहाँ उन्होंने काव्य -शिल्प -भाषा एवं शैली में भी क्रांति उपस्थित की और नव्यशास्त्रवादियों की अलंकारबहुल, दुरुह, कष्टसाध्य भाषा से काव्यधारा को मुक्ति दिलाकर उसे सरल, अकृत्रिम एवं प्रवाहमयी बनाया । इतना ही नहीं उन्होंने नव्यशास्त्रवादियों की भाषा-शैली को चुनौती देते हुए यह भी कहा कि ये कविताएँ मुख्यत: इसलिए लिखी गई हैं कि सहृदय इसे स्वयंसिद्धि मान लें कि जनभाषा में लिखी हुई कविताओं में काव्यानन्द रहता है क्योंकि इनमें कुलीनता का अहं नहीं रहता और यह भाषा तो मात्र अपनी भावनाओं को शुद्ध रूप से अभिव्यक्त करती है ।

3.1.3 निष्कर्ष :

अतएव यह निष्कर्ष है कि स्वच्छन्दतावाद कोई दार्शनिक चिंतन या राजनीतीवाद विशेष नहीं है, अपितु वह युगीन सामाजिक संदर्भ में सूक्ष्मातिसूक्ष्म मानवीय चेतनाभिमुखी अनुभूतिजन्य अभिव्यक्ति है । इस प्रकार यह साहित्य का एक व्यापक आंदोलन है जिनके प्रमुख तत्त्व ये हैं - सौन्दर्य के प्रति जिज्ञासा भरा प्रेम, प्रकृति के प्रति आकर्षण और रहस्य की भावना, संवेदना का विस्तार, कल्पना का सुन्दर समाहार, मानवतावादी दृष्टिकोण, भावात्मकता एवं कलात्मकता या भाषा-शैली आदि में परिवर्तन कृत्रिमता से मुक्ति, रुढ़ि और मान्यताओं, मर्यादाओं एवं बंधी-बंधायी अभिव्यंजना शैली में स्वच्छन्दता का भाव आदि ।

मार्क्सवाद

मार्क्सवाद अंग्रेजी के 'मार्क्सिजिम' शब्द का हिंदी पर्याय है ।

3.2 मार्क्सवाद

3.2.1 कार्ल मार्क्स (1818-1883 ई.)

जर्मन दार्शनिक थे । वे जितने बड़े दार्शनिक और विचारक थे, उतने ही बड़े कर्मठ व्यक्ति भी थे । उनका सारा चिंतन संसार को एक व्यावहारिक समानता और खुशहली की ओर ले जाने में लगा था । उन्होंने अपने विचारों से एक नई दुनिया का निर्माण किया । विश्व की अर्थ-व्यवस्था पर उनके विचार मौलिक और क्रांतिकारी हैं । उनका दर्शन ऐतिहासिक भौतिकवाद के नाम से प्रसिद्ध है ।

3.2.2 मार्क्सवादी सिद्धांत

मार्क्सवादी सौन्दर्य या साहित्य सिद्धांत का मूल उत्स द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद Delectic Materialism और तज्जन्य ऐतिहासिकवाद तथा द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से तो वह जीवन एवं जगत का विश्लेषण करता है और ऐतिहासिक भौतिकवाद से सामाजिक विकास का । उनका ऐतिहासिक भौतिकवाद ही द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है । जिसका सीधा अर्थ है कि यह सृष्टि भौतिक है और इसमें निरंतर परिवर्तन होता रहता है । परिवर्तन एक सार्वभौम सत्य है । यह परिवर्तन द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया से होता है । वस्तुत: प्रत्येक परिस्थिति में उसका विरोधी तत्व निहित होता है । इन दोनों में द्वन्द्व स्वाभाविक है । यह द्वन्द्व ही परिवर्तन का कारण है । अतएव कार्लमार्क्स के दर्शन को ही द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की संज्ञा प्रदान की गयी है और उन्होंने सैकड़ों वर्ष पूर्व यह कहा था- Pbilosophers merely explained, the world in different ways ie point is however to change it. इस प्रकार मार्क्सवाद उक्त दार्शनिक सिद्धांत के अनुसार न केवल इस जीवन एवं जगत की व्याख्या की अपितु इसमें परिवर्तन लाने के लिए साम्यवाद नामक एक व्यावहारिक निश्चित दर्शन भी दिया ।

मार्क्स का विश्वास था कि जो वर्ग सामाजिक शक्तियों का नियमन करता है, वही राजनीतिक

शक्ति का भी अधिष्ठाता होता है । जिस प्रकार राज्यशासन जनता को भौतिक रूप से शोषित करता है, उसी प्रकार धर्म भी जनता को मानसिक रूप से भयग्रस्त बनाता है । धर्म जनता की स्वतंत्र चेतना को नष्ट कर देता है । वह अफीम के समान है जिसके सेवन से उसकी मति भ्रष्ट हो जाती है । साहित्य भी अर्थ -व्यवस्था से ही नियमित और संचालित होता है, क्योंकि साहित्यकार भी एक सामाजिक प्राणी होता है, अत: समाज की आर्थिक व राजनीतिक व्यवस्था उसका भी निर्माण करती है तथा उसकी प्रतिभा और उसकी कल्पना को प्रभावित करती है । साहित्य भी युगीन अर्थव्यवस्था एवं उससे संचालित सामाजिक तंत्र की अभिव्यक्ति होता है । फिर भी मार्क्स का विचार था साहित्य, सामाजिक स्थिति का यथार्थ चित्र होते हुए भी उसमें इतनी शक्ति होती है कि वह समाज-व्यवस्था को बदल सकता है । वह सामाजिक क्रांति उपस्थित कर सकता है । साहित्य सामाजिक परिवर्तन का अमोघ -साधन है । पूँजीपति, साहित्य का इस प्रकार से संचालक करता है कि शोषण और प्रतिक्रियावादी प्रवृत्तियाँ पोषित हो सकें । इसके विपरीत क्रांतिकारी वर्ग साहित्य का उपयोग क्रांति की अवधारणा के लिए करते हैं और उसे प्रगति का साधन बना देते हैं ।

उनके विचार से कला-सृजन व्यक्तिगत चेतना का परिणाम नहीं है, वरन वह सामाजिक चेतना का प्रतिफलन है । मार्क्स इस विचार को नहीं मानते कि कला की सृजन -प्रक्रिया अचेतन और यांत्रिक होती है । उनका विचार है कि व्यक्ति अपनी शारीरिक और जैविक आवश्यकताओं से ऊपर उठकर कला की सृष्टि कर सकता है । वास्तव में वह प्रकृति की पुन:सृष्टि करता है और जागरुक रहकर सौन्दर्य और मूल्यों की रचना करता है ।

मार्क्सवाद का एक बीज शब्द है -'विचारधारा' और विचारधारा विज्ञान-सम्मत है । यह मजदूर वर्ग और मानव-जाति की विशाल बहुसंख्या के जीवन हिस्सों को व्यक्त करता है, जो शांति, स्वतंत्रता और प्रगति के इच्छुक होते हैं । आज वर्ग संघर्ष के स्थान पर दलित चेतना और नारी - मुक्ति आंदोलन का प्रभाव बढ़ गया है । मार्क्स का दर्शन आज के युवा में प्रासंगिक है । उनका चिंतन सामान्य अभावग्रस्त सर्वहारा जनता की मुक्ति का दर्शन है । अभी भी तीसरी दुनिया में अशिक्षा, अभाव, अंधविश्वास और शोषण का अंत नहीं हुआ है । भारत की भी दो तिहाई आबादी घोर अभाव में जी रही है । हिंदी में आज भी जनवादी लेखन की आवश्यकता है और भविष्य में रहेगी भी । क्योंकि पूँजीपति या बुजुआ वर्ग से मुक्ति पाने के लिए साधारण गरीब या सर्वहारा जन को जगाने के अर्थ में जनवादी रचना - धर्मिता या लेखन की अत्यंत आवश्यकता है । मार्क्स का कहना है कि वैज्ञानिक प्रगति ने उत्पादन दिया और सामंतशाही की परिणति पूँजीपति में हुई । पूँजीपति ने व्यक्ति स्वातंत्र्य को महत्व दिया । व्यक्ति ने निरंकुश होकर समाज की संपदा पर अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया । इस व्यवस्था में सर्वाधिक शोषण श्रमिकों का हुआ । श्रमिक सर्वहारा हो गया । द्वन्द्वायाय से

यह सर्वहारा वर्ग ही पूँजीवाद का खात्मा करेगा और 'साम्यवाद' की स्थापना होगी । रूस में जाराही के विरुद्ध सर्वहारा क्रांति हुई थी ; साम्यवादी व्यवस्था का एक ढाँचा कायम हुआ था । सारे संसार के श्रमिकों ने रुसी क्रांति का स्वागत किया था । अक्टूबर 1917 ई. में रूसी क्रांति हुई थी । हिंदी की राष्ट्रवादी पत्रिकाओं ने इसका व्यापक स्वागर किया था । 1939 ई. में द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ गया । रूस को विकास के लिए 21 वर्षों का समय मिला था फिर भी उसने जर्मन जैसे सशक्त फासिस्ट देश को हराकर अपना महत्व कायम रखा ।

मार्क्सवादियों के अनुसार इतिहास का मार्ग उत्पादन का भौतिक मूल्यों द्वारा निर्णीत होता है और मार्क्स इतिहास की आर्थिक व्याख्या से इसी निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि प्रत्येक युग की आर्थिक व्यवस्था का नियमन विशिट वर्ग के हाथों संपन्न हुआ है तथा जिस वर्ग के हाथों में समाज के अर्थोत्पादन के साधनों की बागडोर रहती है वही वर्ग समाज का नियामक होता है । अतएव उत्पादन के साधनों का स्वामित्व परिवर्तित होते ही सामाजिक व्यवस्था में भी परिवर्तन हो जाता है और यह अधिकार परिवर्तन क्रांति की आवश्यकता अनुभव करता है । मार्क्स ने आधुनिक युग में वर्ग संघर्ष की अनिवार्यता स्पष्ट करते हुए यही कहा है कि कुछ मुट्ठी भर पूँजीपति समाज के धनोत्पादन के साधन पर अधिकार रखे हुए हैं और वे निजी लाभ के लिए समाज का शोषण कर रहे हैं अत: एक ओर पूँजीपति सर्वहारा वर्ग का शोषण का अधिकाधिक धनवान होते जा रहे हैं दूसरी ओर सर्वहारा वर्ग दरिद्र एवं विपन्न होता जा रहा है । इसलिए मार्क्स ने संसार के मजदूरों को संगठित हो जाने की प्रेरणा देते हुए कहा था कि जिस प्रकार राज्य जनता को भौतिक रूप से शोषित करता है उसी प्रकार धर्म भी जनता को मानसिक रूप से क्षयग्रस्त बानाता है -

Religion represens the spiritual force of opression Just as state represents the physical.

मार्क्स और ऐंजिल्स ने प्राय: अनेक विषयों पर साथ-साथ मिलकर लिखा है । उनके साहित्य और कला संबंधी विचार लिटरेचर एंड आर्ट नामक ग्रंथ में प्रकट हुए हैं जो उनके ए कण्ट्रीब्यूशन टु दि क्रिटिक आफ पोलिटिकल इकोनामी नामक ग्रंथ की प्रस्तावना का अंश है । इसमें साहित्य संबंधी प्रमुख मार्क्सवादी स्थापनायें या विचार इस प्रकार हैं -

वस्तुत: मार्क्स के साहित्य संबंधी विचार उसकी आर्थिक विचारणा पर आधारित हैं और उसका यही कहना था कि साहित्य एक निरपेक्ष सत्ता न होकर समाज की अर्थ-व्यवस्था से ही नियमित एवं संचालित होता है क्योंकि साहित्यकार एक सामाजिक प्राणी है और समाज की आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था उसका निर्माण करती है । अतएव उसकी सद्भावनाएँ इन शक्तियों द्वारा आवश्यक रूप से प्रभावित होती है और साहित्य युगीन अर्थ -व्यवस्था एवं उससे नियमित सामाजिक

तंत्र की अभिव्यक्ति है । मार्क्स के शब्दों में -The mode of production in material life deternines the social , political and intellectual life processes in general. It is not the consciousness that deternines their being but on the contrary their conciusness.

मार्क्स का कहना है कि यद्यपि साहित्य सामाजिक स्थिति का चित्र है परंतु उसमें इतनी शक्ति होती है कि वह समाज व्यवस्था को परिवर्तित कर सकता है और उसे सामाजिक परिवर्तन का एक अचूक साधन समझना चाहिए । साहित्य की इस शक्ति से परिचित होने के कारण पूँजीपति साहित्य का संचालन इस प्रकार करते हैं कि शोषण एवं प्रतिक्रियावादी प्रवृत्तियाँ संबंधित हो सकें । ठीक इसके विपरीत क्रांतिकारी और परिचित वर्ग साहित्य का उपयोग क्रांति की अवतारणा के लिए करते हैं तथा साहित्य को प्रगति का साधन बना देते हैं । साथ ही मार्क्स मनोविश्लेषणकों की इस धारणा से सहमत नहीं है कि कला की सृजन प्रक्रिया अचेतन एवं यांत्रिक होती है और व्यक्ति की जैविक आवश्यकताओं के आधार पर उसका उदय होता है । इस प्रकार मार्क्स कला सृजन को व्यक्तिगत चेतना का परिणाम न मानकर सामाजिक चेतना का प्रतिफल मानता है ।

सामान्यतया कार्ल मार्क्स के विचारों पर ही अन्य मार्क्सवादी विचारकों के साहित्य विषयक विचार आधारित हैं और ऐंजिल्स ने भी मार्क्स के सदृश धर्म एवं दर्शन को जन -सामान्य को बहकाने वाली वस्तुएँ माना है । साथ ही उन्होंने साहित्य के आर्थिक सामाजिक आधार पर ही बल दिया था और साहित्य को समाज की परोक्ष छाया भी माना या उनके परवर्ती मार्क्सवादियों ने न केवल साहित्य से विशुद्ध सिद्धांत प्रचार की आशा की अपितु आदर्श साहित्य के प्रतिमानों को भी निर्धारित किया । इस प्रकार मार्क्सवादी साहित्य पूर्व निर्धारित प्रतिमानों के आधार पर लिखा जाने लगा ; जैसे -

1) साहित्य में वर्ग संघर्ष एवं आदर्शात्मक समाज की परंपराओं के विरुद्ध क्रांति पर बल देना ।
2) कला के प्रति नियतिवादी धारणा को मान्यता देता और बतलाना कि कलाकारों को आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति से किस प्रकार कला प्रभावित है ।

इस प्रकार मार्क्सवादी या साम्यवादी विचरकों ने साहित्य एवं समाज को कार्यकारण भाव से संबंधित मानते हुए भी कला के लिये सैद्धांतिक दृष्टिकोण को अनिवार्य बतलाया है । अतएव प्लेखोनवे, लेनिन, जोसेफलरेवी, ट्राटस्की, रैल्फ फ्रॉक्स, जैम्स टी फैरेल आर क्रिस्टोफर कॉडवेल आदि प्रसिद्ध मार्क्सवादी साहित्य-चिंतकों ने कला एवं साहित्य में पूँजीवादी प्रवृत्तियों का विरोध करते हुए यह मत प्रकट किया कि काव्यगत सत्य अनिवार्य रूप से सामाजिक होता है और साहित्य से वर्ग संघर्ष एवं श्रमिक वर्ग की अनुभूति को निकाल दिया जाय तो उसमें केवल पूँजीपति एवं

शोषक वर्ग के अनुभव ही शेष रहेंगे । सारांश यह है कि मार्क्सवादी विचारक कला को एक सामाजिक कृति ही मानते हैं ।

मानवतावादी दृष्टि :

मानव के गौरव और गरिमा की जोरदार शब्दों में प्रतिष्ठा की गई । मनुष्य को मनुष्य के रूप में मान्यता मिलनी चाहिए । उसने प्रेम की अन्तर्व्यापी शक्ति को भी उभारा । नगरीय भीड़भाड़ और दिखावे के व्यवहार के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया भी रूसो ने व्यक्त की । इसका प्रभाव स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा पर गहरा पड़ा । व्यापक रूप से पीड़ित और दुखी के प्रति संवेदना का भाव इस प्रकार के काव्य में देखने को मिलता है । संवेदना के विस्तार से व्यापक प्रेमभाव जाग्रत् हुआ जिसके परिणामस्वरूप मानवतावादी दृष्टिकोण का विकास हुआ ।

3.2.3 कलावाद -कला, कला के लिए आन्दोलन :

जिस प्रकार स्वच्छन्दतावाद, साहित्य में शास्त्रवाद या नियमबद्धता का विरोधी था, उसी प्रकार कलावाद, कला के क्षेत्र में धार्मिकता और नैतिकता के उद्देश्य का विरोधी आन्दोलन था । यह एक प्रकार से कला की मुक्ति एवं कला की स्वयंसाध्यता को लेकर चली हुई विचारधारा का रूप था ।

प्लेटो ने भी कविता को तभी स्वीकार किया, जबकि उसमें समाज और राज्य के संगठन और उन्नति के विचार और तत्त्व समाविष्ट हों । आगे चलकर अरस्तू, होरेस आदि ने कला को स्वतंत्र मानते हुए भी उसमें नैतिकता और सामाजिकता को आवश्यक माना । मध्ययुग में तो कला, धर्म-प्रचार का माध्यम ही बन गयी । पुनर्जागरण-कला में भी कला और कविता नैतिक और सामाजिक मूल्यों के आधार पर ही मूल्यांकित की जाती थी । मैथ्यू आर्नल्ड ने काव्य की कसौटी को नैतिकता पर ही आधारित किया । जीवन-मूल्यों की स्थापना ही उसका लक्ष्य है । वर्ड्सवर्थ तक ने अपने 'लिरिकल बैलेड्स' की भूमिका में काव्य-सिद्धान्तों की चर्चा करते हुए नैतिकता की बात कही है । कविता को उन्होंने मानवमात्र को आनन्द प्रदान करनेवाली वस्तु माना है । परन्तु शैली ने नैतिक और उपदेश-प्रधान कविता के प्रति घृणा का भाव व्यक्त किया । उनके विचार से कविता की नैतिकता, मन में प्रेम, विश्वास, आशा, सहनशीलता के बिना कोई प्रभाव नहीं डाल सकती । पर वे भी शुद्ध कलावादी नहीं कहे जा सकते । रस्किन, तालस्ताय आदि का भी मत नैतिकतावादी ही रहा । परन्तु

धीरे-धीरे इस नैतिकतावाद के विरोध में भावना बनती गयी और यह विचार उभरने लगा कि कला का उद्देश्य और साध्य, कला ही होना चाहिए, अन्य कुछ नहीं ।

इस विचार को बहुत बड़ा आधार काण्ट के सौन्दर्यवादी दार्शनिक विचारों से मिला । काण्ट ने सुन्दर की निरपेक्ष और पूर्ण सत्ता स्वीकार की । सौन्दर्यमूलक आनन्द प्रयोजन-युक्त होने के साथ-साथ प्रयोजन-रहित भी है । वह व्यक्तिगत इच्छा से स्वतंत्र है । सौन्दर्यगत आनन्द वैयक्तिक होते हुए भी सार्वभौम है । प्रयोजन-रहित या प्रयोजन-निरपेक्ष सौन्दर्य, स्वतंत्र और पूर्ण स्वायत्त सौन्दर्य है । इसी प्रकार उन्होंने यह भी स्थापना की कि प्रतिभा किसी नियम का अनुसरण नहीं करती, वरन् नियम प्रतिभा का अनुसरण करते हैं । काण्ट के इन विचारों ने स्वच्छन्दतावादी और कलावादी दोनों विचार-धाराओं को प्रेरणा दी । उनके विचार इस प्रकार कला और काव्य के क्षेत्र में क्रान्तिकारी विचार थे । इसका प्रभाव फ्रांस पर पड़ा । बादलेयर पर भी इसका प्रभाव पड़ा, साथ ही अमेरिकन कवि 'एडगर एलेन पो' पर भी इसका प्रभाव पड़ा । 'एलेन पो' यही मानते थे कि कविता को केवल कविता के लिए लिखना चाहिए, तभी उसका संरचनात्मक सौन्दर्य, पूर्णता को प्राप्त होता है । बादलेयर के विचार से नैतिकता कविता भी उसी प्रकार परिव्याप्त रहती है, जैसी कि जीवन में । बादलेयर कलावादी तो थे, पर नैतिक मूल्यों के प्रति भी उनकी आस्था थी । फिर भी वे एडगर एलेन पो के बड़े प्रशंसक थे ।

फ्रांस और जर्मन कलावादी विचारों का इंग्लैंड के कवियों और साहित्य-चिन्तकों पर बड़ा असर पड़ा और 'कलावाद' ने एक आन्दोलन का रूप धारण कर लिया । कलावादी दृष्टिकोण के जन्मदाता जहाँ काण्ट को माना जाता है, वहीं उसके विकास का श्रेय वाल्टर पेटर, आस्कर वाइल्ड और डॉ. ब्रैडले को है ।

वास्तव में 'कला, कला के लिए' है इस विचार का सूत्रपात फ्रांस के सुप्रसिद्ध साहित्यकार बेंजमिन कान्स्टैण्ट को है, जर्मन साहित्य-क्षेत्र से संपर्क स्थापित कर 1804 ई. में उन्होंने एक लेख लिखा जिसमें यह दिखाया गया था कि काण्ट की विचारधारा से उठे विचार-विमर्श से किस प्रकार 'कला, कला केलिए' कथन चल पड़ा जिसमें यह भावना निहित है कि उद्देश्य, कला को विकृत कर देता है, परन्तु कला, एक ऐसे उद्देश्य को सिद्ध करती है, जो उसमें होता है । कान्स्टैण्ट और मादाम दे स्टेल के जर्मनी से फ्रांस वापस आने पर काण्ट की विचारधारा का बड़ा प्रचार हुआ । फ्रांस के गौटिये(Gautier) भी इसी विचारधारा के समर्थक थे । गोटिये और एडगर एलेन पो के विचारों में काफी समानता देखने को मिलती है । पो का प्रभाव बादलेयर पर काफी व्यापक था ।

इंग्लैंड में वाल्टर पेटर के लेखों से कलावादी आन्दोलन को विशेष बल प्राप्त हुआ । इनके कलावादी विचार इनकी इटली की यात्रा के बाद विशेष रूप से विकसित हुए । इनकी पुस्तक हिस्ट्री

ऑफ रेनेसाँ के कुछ लेखों से कलावादी आन्दोलन बड़ा प्रभावित हुआ । पेटर के सौन्दर्यशास्त्रीय विचारों को मान्यता मिली । इनको शैली बड़ी प्रांजल और परिष्कृत थी । वे कलावादी लालित्यबोध के विचारकों में थे । उनका मत है कि कला की सार्थकता जीवन के कलात्मक निरूपण से ही होती है । महान् कवि न तो शिक्षा और उपदेश देते हैं और न नियमों को ही बनाते हैं । वे मानव-जीवन को बंधी-बंधायी यान्त्रिकता से दूर कर परिस्थितियों के साथ भावनात्मक सम्बन्ध-स्थापित करते हैं । साहित्य और कला जीवन की अखण्डता की अनुभूति और अभिव्यक्ति है । पेटर का यह विश्वास है कि कला में निहित आनन्द, किसी अन्य उपयोगिता के कारण नहीं । कला की सत्ता तीव्र और उदात्त आनन्द प्रदान करने के लिए है । पर उनका यह भी मत था कि जो उत्कृष्ट आनन्द होता है, उसमें नैतिकता का स्पन्दन स्वत: ही होता है । अनुभूति का फल नहीं, वरन् स्वयं अनुभूति ही कला का उद्देश्य है ।

कलावाद के इतिहास में आस्कर वाइल्ड के विचारों का प्रेरक और उत्तेजक योगदान है । वे इस मत के उद्दण्ड समर्थक और आक्रामक प्रचारक थे । कला के लिए उन्होंने भावना को महत्त्व प्रदान किया । उनके विचार से कला और कविता में रूप-रचना (Form) का बड़ा महत्त्व है । इसी के द्वारा कला के रहस्य उद्घाटित होते हैं । छन्द के साथ-साथ वे तुक को भी आवश्यक मानते थे । उससे कृति का छान्दसिक सौष्ठव ही नहीं, वरन् विचार का आध्यात्मिक पक्ष भी प्रकट होता है । कविता में अतिशय तथ्यात्मकता और प्रकृति की घोर यथार्थता उसके सौष्ठव को समाप्त कर देती है । वाइल्ड के मतानुसार भाव, भाव के लिए है, कला का उद्देश्य होता है और भाव, कर्म के लिए है, यह जीवन का उद्देश्य होता है । इसलिए सभी कला नैतिकता-रहित होती है । सुन्दर-सुन्दर वस्तुयें वे होती हैं जिनका हमसे कोई सरोकार नहीं होता । जो वस्तुएँ हमारे लिए उपयोगी होती हैं, हमें प्रभावित करती है - चाहे पीड़ा देती हों या सुख, वे कला के क्षेत्र के बाहर हैं । आस्कर वाइल्ड के विचार से सौन्दर्य सबकुछ उद्घाटित करता है, क्योंकि वह कुछ अभिव्यक्त नहीं करता । Beauty reveals everything because it expresses nothing. उनका यह भी विचार था कि प्रकृति स्वयं सुन्दर नहीं है, कला उसे सुन्दर बनाती है । कला का स्थान प्रकृति से ऊँचा है । प्रकृति में भावना नहीं, वह निर्बल को नष्ट करती है । जबकि कला करुणा की भावना को उभारकर उसे भी सहायता की प्रेरणा देती है ।

कलावादी आन्दोलन में अमेरिकी चित्रकार व्हिसलर का भी योगदान है । उनका यह मत है कि सुन्दर बस्तुएँ केवल वही हैं, जिनसे हमारा कोई संबन्ध नहीं है । वस्तु को जब तक उपयोगी तथा सुख या दु:ख पहुँचानेवाली हम मानते हैं, तब तक वह कला के वृत्त के भीतर नहीं आती । कला की विषय-वस्तु के प्रति हमारी उदासीन भावना रहती है ।

'कला, कला के लिए है' या 'कविता, कविता के लिए है' इस मत के प्रबल समर्थक डॉ. ए.सी.ब्रैडले थे । उन्होंने 'कविता, कविता के लिए है' विषय पर व्याख्यान ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी में दिये थे, जो पुस्तक-रूप में भी प्रकाशित हुए । उनके ऑक्सफोर्ड लेक्चर्स ऑन पोइट्री में कलावादी विचार प्राप्त होते हैं । उनके विचारों का संक्षेप इस प्रकार है -

1. कविता विविध अनुभवों का क्रम है, जो हमें ध्वनियों, कल्पनाओं, बिम्बों, विचारों, भावों आदि के रूप में कविता पढ़ते समय प्राप्त होता है । वह अनुभव काल्पनिक होता है और प्रत्येक पाठक एव प्रत्येक पाठ के साथ भिन्न-भिन्न रूप में प्राप्त होता है । इस प्रकार एक कविता अनेक कोटियों में रहती है ।
2. 'कविता, कविता के लिए है' इस सूत्र से जो बातें समझनी चाहिए, वे हैं - प्रथम यह है कि अनुभव स्वयं ही साध्य है और इसका अपना निजी स्वतंत्र मूल्य है । द्वितीय यह है कि काव्य का मूल्य यही अनुभव है । कविता का महत्त्व इसके अतिरिक्त अन्य बातों में भी देखा जा सकता है, जैसे धर्म, संस्कृति, उपदेश, शांति, अर्थ-प्राप्ति आदि । परन्तु कविता का यह महत्त्व उसके काव्यात्मक मूल्य को निश्चय नहीं करता जिस प्रकार वह हमें एक कल्पनागत अनुभव के रूप में प्राप्त होता है और तृतीय यह है कि अन्य प्रयोजनों से कविता का वास्तविक मूल्य बढ़ता नहीं, वरन् घटता ही है ।
3. कविता के लिए विषय महत्त्व का नहीं होता और न यही कहा जा सकता है कि उसके बिना कविता केवल रूप है, अभिव्यक्ति है । कविता वस्तु और रूप दोनों का संश्लेषण है ।

अत: कविता का मूल्य विषय में न रहकर समस्त कविता में है, क्योंकि एक ही विषय पर अनेक कोटियों की कविता लिखी जा सकती है । कविता न केवल विषय है और न केवल रूप या शैली । वास्तव में कविता, कविता ही है । उसमें एक को दूसरे से अलग करके नहीं देखा जा सकता । दोनों का एकीकरण ही कविता का मूल और वास्तविक रूप है । अत: जब कविता को तत्त्वों से अलग नहीं देखा जा सकता तो कविता का प्रयोजन भी कविता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है । यही बात सभी कलाओं के लिए है । कविता या कला के मूल्य उसके भीतर होते हैं, उसके बाहर नहीं ।

ब्रैडले के विचार से कविता का संसार, वास्तविक संसार का अंश न होकर अपने पूर्ण जगत् होता है । यद्यपि वे कविता का प्रयोजन कविता को ही स्वीकार करते हैं, पर वे यह भी मानते हैं कि

कविता का सम्बन्ध मानव-जीवन से है । इस प्रकार हम देखते हैं कि कलावाद के अन्तर्गत अरंभ में धर्म और बाद में नैतिकता का विरोध हुआ और कला की निरपेक्ष और स्वायत्त सत्ता स्थापित की गयी । परन्तु इसे भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि कला का सम्बन्ध मानव-जीवन के साथ बड़ा ही सुदृढ़ है । मानव-जीवन के अतिरिक्त कला का कोई स्थान नहीं ।

मनोविश्लेषणवाद

(Psycho -analysism)

3.3 मनोविश्लेषणवाद

आरधुनिक युग में जिस प्रकार राजनीति और आर्थिक व्यवस्था पर मार्क्सवाद का प्रभाव पड़ा है , उसी प्रकार कला, साहित्य और समाज पर मनोवैज्ञानिक खोजों तथा नये-नये मनोविश्लेषण -सिद्धांतों का बड़ा गहराई से प्रभाव पड़ा है । साहित्य का संबंध मानव-मन से है । साहित्य जो विविध चरित्रों का चित्रण करता है, वह किसी न किसी मनोवैज्ञानिक आधार पर होता है । साहित्यकार को उसका ज्ञान हो या न हो, पर उसके चित्रणों में मानव -मन के क्रिया-कलाप ही यथार्थ अथवा काल्पनिक रूप में प्रतिबिम्बित होते हैं । चाहे कविता हो, चाहे कथा-साहित्य अथवा चित्रकला या मूर्तिकला, सभी मानव-मन:स्थितियों का ही चित्रण करती हैं । मनुष्य के भीतर काम और अहम् की प्रवृत्ति बड़ी व्यापक और बड़ी गहरी होती है । ये प्रवृत्तियाँ दो रूप में हमारे सामने आती हैं - एक सहज, स्वाभाविक रूप में और दूसरे विकृत रूप में । मानव -जीवन में संघर्ष और टकराव की स्थिति इन्हीं प्रवृत्तियों के कारण बनती है । साहित्य में भी जो युद्ध संघर्ष, दुर्व्यवहार और सदाशयता आदि के चित्रण होते हैं, वे मानव की मानसिक क्रियाओं का आधार लेकर चलते हैं । साहित्य और कलाओं में इस प्रकार के चित्रण तो आदिकाल से चले आते हैं, पर इन चित्रणों के मनोवैज्ञानिक कारणों पर प्रकाश आधुनिक युग के चिंतकों ने डाला । उन्होंने जहाँ एक ओर जीवन के विभिन्न संघर्षों, द्वन्द्वों और टकराव के विश्लेषण द्वारा अपने सिद्धांतों का निरूपण किया ; वहीं साहित्य और कलाओं की सृजन प्रेरणा -प्रक्रिया और सृजन के स्वरूप में भी मनोवैज्ञानिक नियमों को ढूँढने का प्रयत्न किया ।

3.3.1 फ्रायड

यद्यपि मनोवैज्ञानिक अध्ययन और अनुसंधान विज्ञान की एक महत्वपूर्ण शाखा बन गयी है और उसमें योगदान करनेवाले असंख्य मनोवैज्ञानिक हैं, फिर भी जिनके सिद्धांतों ने कला और

साहित्य को अतिशय प्रभावित किया है, ऐसे विचारकों में सिगमंडफ्रायड, ऐलफ्रेड एलडर, कार्लयुंग, मैक्डगल, हैवलाक, एलिस आदि का महत्वपूर्ण योगदान है । उनके विश्लेषणों ने न केवल कला और साहित्य को गहराई से प्रभावित किया है, वरन उसे एक नयी दिशा और प्रेरणा भी प्रदान की है । मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों पर इनका विचार ही मनोविश्लेषणवाद है । इस मतवाद के प्रबल पक्षधर सिगमंड फ्रयड माने जाते हैं जो इस धारा के प्रवर्तक हैं । बीसवीं शती का आलोचना साहित्य इनके मनोविज्ञान, संबंधी विचारों से विशष रूप से प्रभावित हुआ । सिगमंड फ्रायड (1856 से 1939) मनोविश्लेषणवादी आलोचना का आचार्य भी कहे जाते हैं । मूलत: एक डाक्टर थे और इनका प्रारंभिक शिक्षण रसायनशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र एवं शरीरविज्ञान से हुआ था । उनकी विचारधारा का परिचय इस प्रकार है -

3.3.2 फ्रायड की मनोवैज्ञानिक पद्धति

फ्रायड के ग्रंथों से मनोविश्लेषण का एक जबरदस्त औजार चिकित्सकों को मिल गया । जिसका आज तक उपयोग हो रहा है । फ्रायड की मनोवैज्ञानिक पद्धति को तीन विषयों में बांटा जा सकता है -

1) अचेतन मन,
2) लिबडो या काम-वृत्ति,
3) ग्रंथियाँ ।

1) अचेतन मन :

फ्रायड की स्थापना है कि मनुष्य का मन एक समुद्र में तैरते हुए बर्फ के शिलाखंड (आइसवर्ग) के समान है । उसका जो भाग दिखाई देता है, वह पूरे हिमखंड का एक छोटा अंश होता है । उसका बहुत बड़ा भाग अदृश्य रहता है, परंतु कुछ भाग समुद्र के भीतर पानी में डूबे होने पर भी दिखाई देता है । यही स्थिति मानव -मन की भी होती है । उसके तीन भाग होते हैं -चेतन, अवचेतन या अर्द्धचेतन तथा अचेतन मन । चेतन मन से हम सब देखते और अनुभव करते हैं, पर अचेतन मन दमित इच्छाओं, आकांक्षाओं और गुप्त वासनाओं का एक शक्तिशाली पुंज है । मन का यह भाग हमारे लिए अशांत, अभेद्य, एवं रहस्यमय रहता है । इन दोनों के बीच अर्द्धचेतन या अवचेतन वह खंड है जिस पर अचेन की परछाई पड़ती रहती है । निद्रा के समय जब चेतन मन निष्क्रिय हो जाता है, तब अवचेतन मन की इच्छाएँ और वासनाएँ अवचेतन पर स्वप्न के रूप में प्रतिबिम्बित होती हैं । फ्रायड का मत है कि चेतन और अवचेतन में द्वन्द्व चलता रहता है । चेतन मन, व्यक्ति परिवार और

समाज की नैतिकता और मर्यादा के संस्कारों से ओतप्रोत होता है, अत: जब अचेतन की इच्छायें और वासनायें चेतन के धरातल पर आने लगती हैं, तब चेतन के संस्कार उसका प्रतिरोध या निषेध करते हैं, वे असमाजिक एवं अनैतिक वासनाओं का दमन करते हैं । इस दमन का कारण मानसिक वर्सनाएँ और ग्रंथियाँ निर्मित हो जाती है । इन ग्रंथियों के कारण मानसिक विकृतियाँ उत्पन्न होती है, परंतु कभी-कभी अवचेतन की इच्छायें और वासनाएँ, चेतन मन के द्वारा परिस्कृत एवं उदात्त रूप में अभिव्यक्त की जाती है । यही अभिव्यक्ति कला और साहित्य का साधारण करती है ।

2) लिबिडो या काम वृत्ति : फ्रायड

मनुष्य के सभी क्रिया-कलाप के मूल में काम -वृत्ति को मानते हैं । धर्म, अर्थ, साहित्य और संस्कृति की मूल प्रेरणा भी यही काम-वृत्ति है । मनुष्य की कुण्ठित और दमित असामाजिक इच्छायें और प्रवृत्तियाँ उदात्त और परिष्कृत होकर कलाओं और संस्कृतियों का निर्माण करती हैं । फ्रायड काम-वृत्ति को ही साहित्य सर्जना की मूल प्रेरणा मानते हैं । उनका विचार है कि साहित्यकार कल्पनाशील होता है, अत: वह अपनी वर्णनाओं को काम-प्रतीकों के रूप में प्रकट करता है । कला और साहित्य -सृजन काम -प्रतिकों का पुनर्निर्माण है । कला के रहस्य की सृजन -प्रक्रिया का पूरा विश्लेषण करें । उनका विचार है कि केवल कला ही नहीं, वरन प्रत्येक सर्जनात्मक क्रिया में अचेतन मन की वासनायें विद्यमान रहती हैं । इस प्रकार स्वप्न , कल्पनायें, योजनायें आदि मानसिक व्यापार भी कविता या कला के समान ही है । ये काम तअप्ति के रूप हैं ।

3. ग्रंथियाँ या वर्जनायें :

फ्रायड का मत है कि इच्छाओं और वासनाओं के दमन से ग्रंथियाँ या कुंठायें हो जाती हैं । वासनाओं के उदात्तीकृत से ग्रंथियाँ खुलती और कुंठायें दूर हो जाती हैं और इस उदात्तीक परिष्कृत क्रिया -कलाप से सभ्यता का विकास एवं सांस्कृतिक मूल्यों का निर्माण होता है । आदिम बर्बर वासनायें एक सुसंस्कृत व्यवहार का रूप धारण करती हैं । कला और साहित्य भी इसीका एक रूप है । फ्रायड का विचार है कि वासनाओं की तृप्ति का सुख तीव्र होता है, जबकि कला और साहित्य का आनन्द मंद और आह्लादमय होता है ; पर वह सामूहिक होता है और अधिक स्थायी भी । वासनाओं की तृप्ति शारीरिक होती है, कला का आनन्द मानसिक होता है । कला संप्रेषणपरक है, अत: उसका सामाजिक महत्त्व है तथा उसका साधारणीकरण भी होता है । उसी के द्वारा समाज के चेतन -संस्कार बनते हैं । कलात्मक अभिव्यक्ति कुंठाओं और ग्रंथियों में मुक्तिप्रदान करती है ।

इसीलिए वह कलाकार के लिए आनन्द का स्रोत है ।

मनोविश्लेषणवाद की स्थापना के संदर्भ में फ्रायड के सिद्धांतों को यौनवाद भी कहा जा सकता है । कला और साहित्य पर भी उनके विचारों का बेहद प्रभाव पड़ा है । इसका मनोविश्लेषणवाद केवल उन्हीं तक सीमित नहीं है, अन्य मनोविश्लेषकों ने अपने अनुसंधानों द्वारा कुछ नये सिद्धांत भी दिये हैं । फ्रायड के ही संस्कारियों और शिष्यों में ऐडलर और प्रयुगने फ्रायड से भिन्न सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है ।

एडलर - के मनोविज्ञान में लिबिडो अथवा कामवृत्ति का उतना महत्व नहीं है, जितना अहम् का । उनका मत है कि फ्रायड कामवृत्ति को अनावश्यक महत्त्व देते हैं ; मानसिक स्नायविक रोगों का मूल कारण कामवृत्ति के अतिरिक्त अहं की मांग भी हो सकती है । प्रत्येक व्यक्ति में स्वाभाविक मूल प्रवृत्ति 'अहंस्थापना' (Self assertion) की होती है । इस अहं -स्थापना की इच्छा और जीवन के यथार्थ का विरोध ही मानसिक जीवन की मुख्य समस्या है । यह इच्छा जीवन के तीन क्षेत्रों में व्यक्त होती है - समाज, व्यवसाय और विवाह । इस प्रकार ऐडलर के मनोविज्ञान में आत्मस्थापना की प्रवृत्ति ही प्रमुख है, कामवृत्ति नहीं । मानसिक स्नायविक रेखा का मूल कारण हीनत्व -कुंठा है, यथार्थ से संघर्ष के कारण व्यक्ति के आत्मस्थापन को संतोष नहीं मिल पाता और उसमें हीनत्वभावना विकसित हो जाती है । इस भावना से मुक्ति पाने के लिए परिणाम स्वरूप कुछ व्यक्तियों में अत्यधिक गर्व आ जाता है । जिसे हम हीनत्वकुंठा का कपट -रूप मान सकते हैं । हीनत्वभावना से बचाव के लिए व्यक्ति कुछ सरल साधन खोज लेता है, वह साधन कुछ विशेष -'जीवन -शैली' होती है । जीवन -शैली जीवन के प्रारंभिक वर्षों में ही निश्चित हो जाती है और परिवार में व्यक्ति की स्थिति से निचित होती है । ऐडलर के अनुसार एकलौते बच्चे, प्रथम संतान, द्वितीय संतान, अंतिम संतान सबकी जीवन-शैली पारिवारिक वातावरण से निश्चित होती है । ऐडलर के इन सिद्धांतों का साहित्य और अन्य विचार क्षेत्रों पर उतना प्रभाव तो नहीं पड़ा, जितना फ्रायड के मत का , फिर भी उनके दिये हुए तथ्य मानसिक जीवन की समस्याओं को सुलझाने में काफी सहायक सिद्ध हुए हैं और साहित्य में भी उनका उपयोग होता है ।

जंग ने भी मनोविश्लेषणवाद के सिद्धांतों में कुछ सुधार करके अपना मत दिया है । वह भी फ्रायड के इस मत के विरोधी थे कि जीवन की प्रमुख प्रेरक शक्ति काम है । उन्होंने 'लिबिडो' शब्द का अधिक विस्तृत अर्थ लिया, जिसमें फ्रायड की कामवृत्ति और ऐडलर की आत्मस्थापना -प्रवृत्ति, दोनों ही सम्मिलित हैं । वह उसे जीवन की वह प्रारंभिक और सामान्य प्रेरक शक्ति मानते हैं, जो मानव के सभी व्यवहारों में व्यक्त होती है । यह वह मूल शक्ति है जो विकास क्रिया और जनम, तीनों लक्ष्यों में अपने को व्यक्त करती है । जुंग के मनोविज्ञान का दूसरा महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि उनके

अनुसार यह शक्ति एक अंतिम साम्यावस्था की ओर उन्मुख रहती है ।

जुंग का सबसे महत्त्वपूर्ण सिद्धांत व्यक्तित्व के प्रकारों का सिद्धात है । उनके अनुसार व्यक्ति मुख्यत: दो प्रकार के होते हैं । एक तो वे जिनका ध्यान और शक्ति अपने पर ही केन्द्रित रहती है, दूसरे वे जिनकी शक्ति सामाजिक और भौतिक वातावरण की ओर प्रकट होती है । पहले प्रकार के व्यक्ति 'अंतर्मुखी' और दूसरे प्रकार के 'बहिर्मुखी' होते हैं । 'अंतर्मुखी' व्यक्ति विचारों और भावनाओं में केन्द्रित होने के कारण अधिक भावुक, कल्पनाशील, एकांतप्रिय और अव्यावहारिक होते हैं । 'बहिर्मुखी' व्यक्ति व्यवहार -कुशल, सामाजिक और क्रियाशील अधिक होते हैं । गेस्टाल्ट साइकोलोजी और सीखने के मनोविज्ञान का साहित्य के नये विचारों पर व्यापक प्रभाव है ।

मनोविश्लेषणवाद -सिद्धांत विचार-जगत में न्यूटन- कोपर निकस, आईंस्टाइन और मार्क्स के सिद्धातों की भाँति क्रांतिकारी सिद्ध हुआ है । वह बीसवीं शताब्दी में विश्व-मनीषा का एक अन्यतम महव्वपूर्ण तथा अविभाज्य अंग बन गया है । मनुष्य के हृदय तथा उसकी वास्तविक प्रेरणाओं का जो ज्ञान पहले केवल प्रतिभाशाली अंतदृष्टि के लिए ही संभव था, वह अब सामान्य ज्ञान का विषय है । साहित्य और कला पर भी इसका व्यापक प्रभाव पड़ा है ।

3.3.3 निष्कर्ष :

सामान्यतया मनोविश्लेषणवादी विचारकों ने जिन साहित्यिक मान्यताओं की स्थापना की है उनमें से अधिकांश व्यक्ति -वैचित्र्य के धरातल पर प्रतिष्ठित हैं और मार्क्सवादी विचारकों ने मनोविश्लेषणवादी साहित्य की कटु आलोचना करते हुए साहित्य की लोकोन्मुखता पर ही बल दिया है । इस प्रकार मनोविश्लेषणवादी सिद्धांतों का बहुत अधिक विरोध होते हुए भी न केवल अनेक पााचात्य विद्वान मनोविश्लेषणवाद से प्रभावित जान पड़ते हैं अपितु हमारे हिंदी साहित्य पर भी मनोविश्लेषणवाद का प्रर्याप्त प्रभाव पड़ा है ।

अस्तित्त्ववाद

(Existentialism)

3.4 अस्तित्त्ववाद

अस्तित्त्ववाद पाश्चात्य दर्शन की एक आधुनिक धारा है । प्रारंभ में इसे फ्रांस में अत्यधिक सफलता प्राप्त हुई थी । तथा धीरे-धीरे यह संपूर्ण यूरोप में छा गया । यह विचारधारा हीगेल के आदर्शवाद और नियतिवाद की प्रतिक्रिया के रूप में पनपा । नियतिवाद यह मानता है कि सारा जगत् भौतिक नियमों के अधीन कार्य करता है । चाहे जड़ हो, चाहे चेतन । प्रत्येक व्यापार कार्य-करण के नियम से होता है । चेतन जीव, जड़ की ही विकसित स्थितियाँ हैं । मानव भी विशाल प्राकृतिकजीवन का एक शुद्र अंश है । उसकी स्थिति पहले से ही निर्धारित है और वह स्वतंत्र नहीं, चेन भी आदर्शवाद नियतिवाद का विरोधी है । उसके अनुसार चेतन ही जगत् का केन्द्रीय तत्व है । वह अपने उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए कार्य करता है । ये उद्देश्य आध्यात्मिक होते हैं और मनुष्य ही इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए स्वतंत्र है । वही अपने आदर्शों के अनुसार जीवन का निर्माण और विकास करता है । एक में मनुष्य नियति के द्वारा और दूसरे में वह उद्देश्यों के द्वारा नियंत्रित है । अस्तित्ववाद मानता है कि ये दोनों अपवाद मानव-व्यक्तित्व पर कुठाराघात करते हैं और उसकी स्वतंत्रता का अपहरण करते हैं, उनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति अपने अस्तित्व का अनुभव करता है उसमें स्वतंत्रता और दायित्व की चेतना होती है । मृत्यु एक सचाई है और अस्तित्ववाद मानव-अस्तित्व के इसी सत्य की व्याख्या करता है । मनुष्य का वास्तव में अस्तित्व है, अन्य पदार्थ और गुण सारभूत हैं । अस्तित्ववाद का दार्शनिक क्षेत्र में उतना गहरा प्रभाव नहीं पड़ा, जितना कि साहित्य और कला के क्षेत्र में । अत,व कला और साहित्य के विवेचन के प्रसंग में अन्य दर्शनों की उतनी प्रासंगिल्कता नहीं है, जितनी अस्तित्ववाद की इसीलिए साहित्य -चिंतन के क्षेत्र में अस्तित्ववाद का महत्व है ।

3.4.1 ज्यॉपाल सार्त्र

अस्तित्ववाद संप्रादाय का उद्गम स्रोत जर्मन दार्शनिक हसरेल तथा हेडेगर और डेनिश चिंतक कीर्कगार्ड (1813-55ई.) की विचार पद्धतियों में देखा जा सकता है । इन विभिन्न चिंतकों के मतवादों का संघटन उन्नीसवीं शताब्दी में फ्रांस में हुआ, जहाँ अस्तित्ववाद को साहित्यिक ख्यानि ज्यॉपाल सार्त्र(1905ई.) के माध्यम से 1943 ई. के आसपास मिली ।

अस्तित्ववाद विचारधारा मानव जीवन का मूलत: निरर्थक मानती है, तर्क को अक्षम समझ कर त्याग देती है । तथा परंपरागत ईश्वर में आस्था को अस्वीकार करती है । अस्तित्ववाद वस्तु: धर्मनिरपेक्ष स्तर पर मानव जीवन के लिए चिंतित है । यह जीवन को निरुपाय अवश तथा निर्थक समज कर उसे एक मानवीय अर्थ तथा मूल्य देने की चेष्टा करता है । इसलिए अस्तित्ववाद दृष्टि में प्रत्येक क्षण का अतुलनीय महत्व है । किसी भी अतियथार्थ का अस्तित्व इस व्यवस्था में स्वीकार्य नहीं । अपनी समग्र अवशता में मनुष्य ही अस्तित्ववाद चिंता का केंद्रबिन्दु है और इस अवशता को नष्ट करने के लिए अस्तित्ववाद मानवीय स्वतंत्र्य का प्रबल समर्थक है ।

अस्तित्ववाद चिंतन का सूत्र वाक्य है -Ex istesce precedes essence अर्थात् अस्तित्व की स्थिति तत्व से पूर्व है । यहाँ तत्त्व से भाव मनुष्य की भौतिक प्रकृति से है और अस्तित्व का अर्थ उसका कर्मसमूह है, जिससे उसकी जागतिक स्थिति सिद्ध होती है । इस प्रकार अस्तित्ववादी चिंतन के धरातल पर मनुष्य जीवन के जीवित संदर्भ में सोचता है ।

विभिन्न विद्वानों ने अस्तित्ववाद की अलग -अलग परिभाषाएँ दी हैं । जूलियन बेंद्रा के अनुसार 'अस्तित्ववाद भाव तथा विचार के प्रति जीवन को विद्रोह है ।' एमानुएल मौनियर के शब्दों में 'भावों तथा वस्तुओं के अतिवादी दर्शन के विरोध में मानवीय दर्शन' ही अस्तित्ववाद है । सबसे स्पेट तथा उपयुक्त परिभाषा ऐलेन की है । उनके अनुसार अस्तित्ववाद परंपरावाद दर्शन की दृष्टि न होकर अभिनेता की दृष्टि है । इस विचार -पद्धति में जीवन कही समस्याओं पर विचार युक्त भोगियों की ओर से होता है ।

अस्तित्ववाद विचारधारा का प्रारंभ होता है मनुष्य की अवश तथा निरुपाय स्थिति से । मानव-जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप, सबसे बड़ी चुनौती मृत्यु है । जन्म के साथ मृत्यु अनिवार्य रूप से संबद्ध है । मनुष्य इसके लिए कुछ कर नहीं सकता और यहीं वह देखता है कि उसे वरण (Choose) करने की स्वच्छन्दता नहीं है । अत: उसे अत्यंत कम समय में अपने व्यक्तिगत जीवन को एक अर्थ देना है ।

इस संदर्भ में अस्तित्ववाद चिंतकों के दो वर्ग हो जाते हैं । एक वर्ग मानव -जीवन को ईवर से संयुक्त करके उसे उसका वास्तविक मूल्य देना चाहता है । जबकि दूसरा वर्ग पूर्णत: निरीश्वरवादी है । कीर्केगार्ड तथा यास्पर्स प्रथम वर्ग से संबद्ध हैं । इन्हें प्राय: क्रिश्चियन एक्जिस्टेनिशयलिस्ट कहा जाता है । अस्तित्ववाद की क्रिश्चियन व्याख्या ऐलेन ने अपनी पुस्तक 'एक्जिस्टेन्शियलिज्म फ्राम विदिन' में बड़े स्पष्ट ढंग से की है । अस्तित्ववाद के निरीश्वरवादी पक्ष का प्रतिनिधित्व सार्त्र करते हैं । जीवन से प्रत्यक्षत: संबद्ध होने के कारण अस्तित्ववाद का एक राजनीतिक पक्ष भी स्पष्ट रूप से उभरकर आया है, यद्यपि उसके मुख्य प्रवर्तक सार्त्र का राजनीतिक मत स्वत: बहुत निश्चित नहीं रहा

है । अस्तित्ववाद की सैद्धांतिक राजनीति का प्रामाणिक विवेचन अल्बर्ट के मुकी प्रसिद्ध कृति 'ल होमे रिवोलते' में हुआ है ।

अस्तित्ववाद चिंतन की पृष्टभूमि में यूरोप की युद्ध कालीन विभीषिकाएँ हैं । मानव जीवन की श्रुद्रताओं को देखकर इन विचारकों ने अपनी लेखनी तथा अपने कर्मों से एक आमूल क्रांति लाने का प्रण किया । इन लेखकों में से अधिकांश युवा थे तथा परंपरागत मूल्यों को निष्प्राण समझ कर उनके स्थान पर अधिक सशक्त तथा मानवीय मूल्यों की स्थापना करना चाहते थे । जीवन की विवशताओं से उत्पन्न हुई निराशा तथा वेदना ने इन्हें आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया । यह सचमुच एक विचित्र तथ्य है कि इसने कर्मण्य बौद्धिक आंदोलन को प्रेरित किया अवसाद तथा निराशा ने । इतिहास में इसकी तुलना किसी हद तक बुद्ध दर्शन की करुणा से की जा सकती है ।

अस्तित्ववादी -लेखक काल्पनिक साहित्य -सर्जन में विश्वास नहीं करते । उनकी दृष्टि में साहित्य जीवन के दैनंदिन संघर्षों से घनिष्ठ रूप से संबद्ध है । मानव मुक्ति में उनकी अटूट आस्था है । इस साहित्य चिंतन का प्रारंभ सार्त्र से होता है, जिसका अनुसरण बाद में बहुत से लेखकों ने किया । इन लेखकों में बहुतों ने एक ओर तो कृति साहित्य की रचना की और दूसरी ओर शुद्ध दार्शनिक स्तर पर अस्तित्ववादी विचारधारा को स्थापित करने का प्रयत्न किया । सार्त्र ने अपनी उपन्यास -त्रयी, कुछ अत्यंत उत्कृष्ट नाटकों तथा कहानियों के लिए कृति साहित्य के क्षेत्र में प्रतिष्ठा प्राप्त की है । उनकी ये सभी रचनाएँ मूल फ्रेंच से अंग्रेजी में अनूदित हो चुकी हैं । कला की दृष्टि से सार्त्र के नाटक (इन कैमरा, द फ्लाइज, रेस्पेक्टेबल प्रौस्टीट्यूट, लूसीफर एंड द लार्ड कीन, इन द मैश) अत्यंत उत्कृष्ट कोटि के हैं । अस्तित्ववादी चिंतन के क्षेत्र में भी सार्त्र की कृतियाँ प्रथम पंक्ति की हैं । इस संदर्भ में उनकी समीक्षात्मक कृतियाँ (ह्वाट इज लिट्रेचर) भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।

सार्त्र का अनुयायी, परंतु बाद में उसका बहुत कुछ विरोधी, नोबेल पुरस्कार -विजेता फ्रेंच लेखक एलवर्ट कामू (1913ई.) अस्तित्ववादी चिंतन के क्षेत्र में सार्त्र के बराबर महत्त्व रखता है । उपन्यास तथा नाटकों का माध्यम उन्होंने कृति साहित्य के क्षेत्र में अपनाया । इसके अतिरिक्त कामू ने अपनी दार्शनिक विचारधारा अलग से कई ग्रंथों में प्रतिपादित की है । उनकी प्रसिद्ध कृति 'ल होमे रिवालते' का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है । सार्त्र तथा कामू के वाद-विवाद पत्रों में बड़ी रुचि के साथ पढ़े गये । 'कम्बैट' नामक पत्र में समय -समय पर प्रकाशित उनके निबंध बुद्धिजीवियों में अत्यंत लोकप्रिय हुए हैं ।

अस्तित्ववादी वर्ग की एक अन्य प्रसिद्ध लेखिका है सिमोन द ब्युवोई । अपने उपन्यास 'ल सां दे आत्रे' (1945 ई.) में उन्होंने समाज के प्रति व्यक्ति के दायित्व का चित्रण किया है । अपनी नाट्यकृति से उन्होंने अस्तित्ववादी विधारधारा को सामान्य जनता तक पहुँचाया है । अस्तित्ववादी

सार, संभावनाओं Abstract concepls को अधिक महत्त्व नहीं देता ; उसकी रुचि तो उन पदार्थों में है जिनका अस्तित्व है ।

अस्तित्व से क्या अभिप्राय है ? :

प्राचीन धारणा के अनुसार जो सत्य है (केवल संभाव्य नहीं है) उसी का अस्तित्व है । जो सार से अस्तित्व की ओर प्रयाण कह सकता है, चाहे वह पत्थर हो या मनुष्य - हम कह सकते हैं कि उसका अस्तित्व है । परंतु अस्तित्ववादियों के अनुसार होने और अस्तित्ववान होने में अंतर है । पत्थर हैं तो, पर से अस्तित्ववान' तभी बनते हैं, जब हम उनके संबंध में सोचळे । उनके लिए अस्तित्व स्थिति (Srale) नहीं, कार्य(act) है - संभावना से वास्तविकता में रुपान्तरित हो जाना है । और इसके लिए स्वतंत्रता आवश्यक है । आदमी का होना एक बात है और उसका अस्तित्व होना दूसरी बात है । अस्तित्व में आने का अर्थ है - वह बनना जो वह चाहता है और इसके लिए उसे अपने को ढालने की स्वतंत्रता चाहिए । वह स्वतंत्रता केवल मनुष्य को प्राप्त हो सकती है, पशु को नहीं । पर इसका यह अभिप्राय नहीं कि सभी मनुष्य इस विशेषाधिकारक का उपभोग करते हैं - बहुत से भेड़-चाल में फँस अपनी स्वतंत्र रुचि खो बैठते हैं । ऐसे व्यक्तियों के संबंध में यह नहीं कहा जा सकता कि उनका सच्चा अस्तित्व है । सार्त्र, हेडेगर, जेस्पर्स की दृष्टि में सच्चा अस्तित्ववाद व्यक्ति तो केवल वह है जो अपने को बनाने में स्वतंत्र है, जो अपना निर्माता स्वयं है, जो स्वावलंबी एवं स्वयं -समर्थ है । सार्त्र के उपन्यास "Le sang des autres") के नारी पात्र जीन ब्लोमार्ट की प्रशंसा इसलिए की जाती है कि वह स्वयं -समर्थ है -That is your great strength that you are self sufficient ; One has the impression that you crcated your self "(sartre, Lesang des autres, p. 89)

अस्तित्ववान बने रहने के लिए आवश्यक है हम निरंतर निर्णय करते रहें कि हम क्या होना चाहते हैं । अस्तित्व का अर्थ है अपनी इच्छानुसार निरंतर ऊपर उठते रहो । "We only exist in the progress towards a further stage of being realised by a free choice." (Paul Foulkie exisentialism, p. 51)

इस प्रकार अस्तित्ववादियों के लिए मानव जगत में अस्तित्व पहले आता है, सार (Essence) बाद में, This means more simply , that man first is , and that after - wards he is that. (J.P. Sarte. Action , Dec.13,1944))

जीवन वही हो सकता है, जो वह स्वयं है । पहले हर व्यक्तित्व होता है, बाद में हम निर्णय करते हैं कि हमें कैसा बनना है, किस आदर्श को प्राप्त करना है । यह विशेषाधिकार वनस्पति या पशुओं को प्राप्त नहीं, क्योंकि उनमें निर्णय -शक्ति , चुनने का विवेक और अवसर ही नहीं होता ।

वृक्ष का भावी विकास उसके बीज में होता है और वह विकास यांत्रिक होता है । इसके विपरीत समान परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न व्यक्ति भिन्न -भिन्न विकास -मार्ग चुन सकते हैं । जो उसने चुनाव किया है, वही उसीको उसका सार तत्व (Essence) कहते हैं । अस्तित्ववादी व्यक्ति के अस्तित्व पर वातावरण और परिस्थितियों के प्रभाव को एकदम अस्वीकार नहीं करते, फिर भी उन्हें नगण्य मानते हैं । किसी व्यक्ति का सुन्दर या कुरूप होना संपन्न या गरीब परिवार में जन्म लेना उसके वश की बात नहीं है, और वह उन्हें बदल नहीं सकता, पर उनके प्रति जो रुख वह अपनाता है, उसमें वह स्वतंत्र है । वह नियति के हाथों की कठपुतली नहीं, पुरुषायी है - मैं इनके प्रति गर्व की भावना या लज्जा के भाव अपनाने और तदनुसार कार्य करने के लिए स्वतंत्र है । साराशं यह है कि मैं इन परिस्थितियों का चुनाव करने में तो स्वतंत्र नहीं हूँ, पर परिस्थिति -विशेष के प्रति रुख अपनाने में जरूर स्वतंत्र हूँ । यह सच है कि कोई युवक अपने विद्यार्थी -जीवन में आलसी, निकम्मा, विलासी और उदंड रहा हो, पर वह आगे चलकर अपना भविष्य सुधार सकता है या अपने अतीत के प्रति धारणा बदल सकता है । इस भौतिक जगत को तो हम नहीं बदल सकते, पर उसके प्रति हमारी दृष्टि (attitude) बदल सकती है । यह हमारे ऊपर निर्भर है कि हम उसे कैसा समझते हैं और उसमें कैसे रहते हैं । सारांश यह है कि अस्तित्वपूर्ण व्यक्ति वही सब है जो कुछ वह करता है । इसी स्वातंत्र्य में उसका अस्तित्व निहित है । अस्तित्ववादी के लिए आदर्श (norm) पूर्वनिर्धारित नहीं होते, वह अपने लिए उनका निर्माण स्वयं करता है । मानव -जीवन को हम किसी एक व्यवस्था या पद्धति में नहीं बांध सकते । व्यवस्था में परिवर्तन नहीं स्थिरता होती है और उसके जन्मते ही प्रयत्न भर जाता है । उसे क्या होना चाहिए, यह नहीं लिखा रहता, वह स्वयं इसका निश्चय करता है । सार्त्र ने " Letre et le neat" में कहा है The essence of the human being is in suspense in his toberty "(J.P. Satre, Letre et le neat , P. 61)

जो कुछ आज मैं हूँ उसके प्रति मेरा सुख ही मेरा भविष्य बनाता है, अत: मैं अपने भविष्य का निर्माता स्वयं हूँ । अपने शुद्ध रूप में अस्तित्ववादी दृष्टि प्रगतिशीलता और आशावादिता से संयुक्त है, क्योंकि अस्तित्व का अर्थ है -विकास करना, आत्मसाक्षात्कार या आत्मोपलब्धि करना ; अनंत से मिलन का मानो वह खुला द्वार है । सार्त्र के लिए अस्तित्व का द्वार उन्मुक्त तो है, पर शून्य तक ले जाने के लिए:- "It leads it to non - entity-" सार्त्र के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपना सत्य, अपनी नीतिमयता, अपने आदर्श चुनने की स्वतंत्रता है । अस्तित्ववादियों के मानव, जगत, ईश्वर तथा मृत्यु संबंधी विचारों के संबंध में निम्नलिखित कथन संक्षेप में द्रष्टण्य है :

3.4.2 अस्तित्ववादी विचारधारा

मानव संबंधी विचार :

अस्तित्ववादी मानव शरीर को महत्वहीन नहीं मानते, शरीर को आत्मा का सांयोजिक अंग() न मान कर अस्तित्व का अनिवार्य तथा स्थायी हेतु स्वीकार करते हैं, क्यों कि चेतना (Consciousness) के लिए शरीर आवश्यक है, सार्त्र सूक्ष्म आत्मा को स्वीकार नहीं करते, केवल चेतना को मानते हैं जिसके कारण ही मानव अन्य पदार्थों से भिन्न है, और जिसकी सहायता से हम घड़ी की आवाज सुन सकते हैं या बता सकते हैं कि घने काले बादलों से वर्षा होगी । इसी चेतना के ऊर्ध्व -संचरण द्वारा मनुष्य परमात्मा बन सकता है । अर्थात् स्वयं अपना निर्माता हो सकता है और कह सकता है " I am because I will it "

आदमी का पहले अस्तित्व है । अपने से सामना कर वह संसार में आता है । बाद में उसकी व्याख्या होती है । यहाँ कोई भगवान इसकी कल्पना के लिए नहीं है । आदमी स्वयं ही अपनी संकल्पना करता है । वही अस्तित्व के लिए प्रेरणित करता है । आदमी ने जो किया उसके बिना वह कुछ नहीं । वह क्या होना चाहता था, इस का कोई महत्त्व नहीं ।

क्या मनुष्य ऐसी कोई वस्तु है जो किसी उद्देश्य के लिए बनाई गई है ? जैसे कागज काटने का चाकू । करीगर के दिमाग में एक उद्देश्य था, वह चाकू बनाने से पूर्व वह निश्चित कर लेता है । क्या भगवान के दिमाग में मनुष्य बानने से पूर्व ऐसी कोई संकल्पना या उद्देश्य था ? ऐसा कुछ नहीं ।

मानव स्वतंत्रता क्या है ? मनुष्य की अपनी स्वतंत्रता दूसरों की स्वतंत्रता पर निर्भर है । उसी तरह उनकी आड़ में छुपाते हैं, वे कायर हैं । जो बहाना करते हैं कि हमारा अस्तित्व जरूरी है । वे ढोंगी हैं । ईश्वर का अस्तित्व नकारने के बाद मूल्यों को देखना होगा । चीजें जैसी हैं, उसी रूप में स्वीकार करना होगा ।

जगत विषयक दृष्टि :

अस्तित्ववादियों का कहना है कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए जगत् उसकी रुचि एवं उद्देश्य आदि के कारण भिन्न-भिन्न रूप धारण कर लेता है और हम जगत् पर निर्भर नहीं करते, बल्कि जगत् हमपर निर्भर है तथा व्यक्ति के लिए उसी जगत का अस्तित्व है, जो उसकी चेतना का परिणाम है - "It is the susprising of conscimmess that brings it about that there is a world ."

साधारणत: प्रत्येक व्यक्ति के लिए अन्य व्यक्तियों का अस्तित्व तभी तक है जब तक वे

उसके लिए उपयोगी हों पर यह न भूलना चाहिए कि सभी व्यक्तियों में चेतना है और सबका अपना स्वतंत्र अस्तित्व एवं व्यक्तित्व है तथा सबके न केवल अपने लक्ष्य हैं अपितु संसार को देखने का अपना अलग-अलग दृष्टिकोण भी है । इस प्रकार हममें से प्रत्येक अपना अस्तित्व बनाये रखना चाहता है अर्थात् अपना लक्ष्य प्राप्त करना चाहता है और ऐसी स्थिति में संघर्ष अवश्यंभावी है । इसलिए अस्तित्ववादियों की दृष्टि में यह जगत् संघर्षमय है ।

ईश्वर संबंधी विचार :

सार्त्र या अस्तित्ववादी ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं करते और उनकी दृष्टि में इस विश्व के निर्माण के पीछे न कोई कारण है, न कोई उद्देश्य और न उसके बनाने की कोई आवश्यकता थी । कहा भी गया है -All existing being are born withunt reason emtonue thrmgh neauness and die by accident..

अस्तित्ववाद और मृत्यु :

अस्तित्ववादी मृत्यु को अनिवार्य मानते हुए कहते हैं कि मृत्यु से वैयक्तिक अस्तित्व की संभावनाएँ बुझ जाती हैं, एकदम समाप्त नहीं हो जाती और मृत्यु हमारे जीवन की दुर्घटना नहीं, बल्कि आरंभ से ही एक ऐसी संभावना है जिसे हम अपने अंदर ही पालते हैं । मृत्यु को हमें स्वीकार करना ही पड़ेगा । लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि हम जगत को अस्वीकार कर दें और उसके कार्यों में कोई भाग न लें । अतएव अस्तित्ववादियों की दृष्टि में मृत्यु जन्म के सदृश ही तथ्य मात्र है और मृत्यु की बंदिश हमारी स्वतंत्रता की बेड़ी नहीं ।

विचारपूर्वक देखा जाय तो अस्तित्ववादी अंतिक किए हैं -

1) वैयक्तिकता का सिद्धांत ही 'सर्वोपरि है क्यों कि सामाजिक संबंधों के मध्य व्यक्ति का अध्ययन संभव नहीं है और उसका विश्लेषण उसे अलग करके ही करना चाहिए ।
2) यह वस्तु जगत आत्म जगत से भिन्न है और मनुष्य आत्मविवेक के लिए सर्वथा स्वतंत्र है तथा प्रत्येक व्यक्ति को मूल्य निर्धारण की स्वतंत्रता है ।
3) निरुद्देश्यता ही जीवन की सार्थकता और भौतिकवाद मानव का चरम लक्ष्य है ।
4) अनिश्चितया सृष्टि का मूल लक्षण है और अस्तित्ववादी संप्रदाय समाजिक या राजनीतिक संगठन को आत्मविवेक का शत्रु मानता है ।
5) अस्तित्ववाद केवल वर्तमान की पूजा करता है पर उसकी दृष्टि से वर्तमान का अर्थ है, संपूर्ण अतीत को समझकर भविष्य में वर्तमान की सार्थकता खोजना ।

इस प्रकार अस्तित्ववादियों के लिए वर्तमान अतीत एवं अनागत की संधि है और अस्तित्ववादी अनागत की ओर उन्मुख होकर वर्तमान को व्यवस्थित कर लेता है । तथा अतीत से भी संबंध विच्छिन्न नहीं करता । हिंदी साहित्य में कहीं-कहीं सार्त्र के क्षर की असीमता की चर्चा मिल जाती है, वेदना की अस्तित्ववादी दृष्टि की कहीं -कहीं द्रष्टव्य है । इस प्रकार की चार्चाएँ 'अज्ञेय' के 'नदी के द्वीप' में सुलभ हैं । नयी कविता की समीक्षा के अंतर्गत भी क्षण के महत्व की विवेचना कभी -कभी उपलब्ध होती है ।

3.4.3 निष्कर्ष :

अतएव अस्तित्ववाद एक महत्वपूर्ण दर्शन है जिसमें सृष्टि की बुनियादी एवं रचनागत अनित्यताओं (Discontinuties) से उद्भूत निरर्थकता पर जोर दिया गया है । उसकी सबसे बड़ी विशेषता रही है कि वह व्यक्ति को स्वयं अपना निर्माण करने, अपने लिए आदर्श निर्धारित करने का स्वातंत्र्य प्रदान करता है, दूसरों की नकल करना ठीक नहीं समझता । वह न हमें अतीत में लौटने की सलाह देता है और न भविष्य की उद्भट कल्पनाओं में भरमाता है, वह मानव की वर्तमान स्थिति की वास्तविकता के परिज्ञान पर ही बल देता है । उसके अनुसार विश्व और समाज के नियम कानूनों के वैज्ञानिक बोध -मात्र में मुक्ति नहीं है, वह व्यक्ति की समग्र दायित्व की इस चेतना में है कि 'मैं अपना साक्षी स्वयं हूँ ।

3.5 अभ्यास के लिए प्रश्न :

1. स्वच्छन्दतावाद के मूल सिद्धांतों का परिचय देते हुए उसकी समीक्षा कीजिए
2. स्वच्छन्दतावाद की विद्रोहात्मक प्रकृति ने काव्य को कृत्रिमता के बंधन से मुक्त किया' इसकी व्याख्यात्मक चर्चा करते हुए स्वच्छन्दतावाद की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए ।
3. मार्क्सवादीप चिंतन क्या है ? इस सिद्धांत का प्रयोग साहित्य की समीक्षा में किस सीमा तक किया जा सकता है ? स्पष्ट कीजिए ।
4. मार्क्सवादी साहित्य सिद्धांत क्या है ? इसकी विशेषताओं का आकलन कीजिए ।
5. मनोविश्लेषवाद का अभिप्राय क्या है˝ समीक्षा सिद्धांत में इसका स्थान निरुपण कीजिए ।
6. मनोविश्लेषवाद सिद्धांत की सामान्य विशेषताओं का आकलन कीजिए ।

7. अस्तित्ववाद किसे कहते हैं ? इसकी समीक्षा करते हुए इसकी प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए ।

8. अस्तित्ववाद सिद्धांतों की समीक्षा कीजिए ।

कुछ उपयोगी पुस्तकें :

1. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र की रूप रेखा - डॉ. रामचन्द्र तिवारी, लोक भारती प्रकाशन, दरवारी बिलडिंग, एम.जी. रोड, इलाहावाद - प्रथम संस्करण -2006

2. पाश्चात्य काव्यशास्त्र सिद्धांत और वाद-विवाद - डॉ. नगेन्द्र तथा रामकुमार कोहली - हिंदी विभाग , दिल्ली विश्वविद्यायल

3. हिदी साहित्य कोश -भाग-1 संपादक धीरेन्द्र वर्मा (प्रधान) , ज्ञान मंडल लिमिटेड, वाराणसी -1 द्वितीय संस्करण संवत 2020

4. पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत - डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त, अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली-6, नया संस्करण 1992

5. पाश्चात्य काव्यशास्त्र : इतिहास, सिद्धांत और बदल - डॉ. भगीरथ मिश्र ,विश्वविद्यालय प्रकाान, वाराणसी

***